और उनका काव्य

चन्द्रशेखर पांडे, एम० ए०

शक १८८४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्र

प्रकाशक का वक्तव्य

स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर ५०००) रुपये की जो सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उससे सम्मेलन ने सुलभ साहित्य-माला के अंतर्गत कई उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी माला में प्रकाशित हो रही है।

साहित्य-मंत्री

सूचीपत्र

भूमिका

भगवान राम में जितनी मर्यादा है, श्रीकृष्ण में उतनी ही सरसता है। यद्यपि राम-श्याम में मैं कोई भेद नहीं समझता और है भी नहीं, किंतु इसी सरसता के कारण मेरा झुकाव कृष्ण की ओर कुछ अधिक है। क्या किया जाय, हृदय ही तो है। कृष्ण की वह सरसता मुझे रसखान के सवैयों में पूर्णरूप से दिखाई दी। रसिक रसखान का एक-एक सवैया मेरे हृदय में घर करता गया। अतः एम० ए० (हिंदी) की परीक्षा में अनिवार्य विस्तृत निबंध के लिये मैंने रसखान के सरस काव्य को ही चुना। वही निबंध पुस्तक के रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

किसी भी रचना के गुण-दोष-विवेचन के साथ ही यदि वह रचना भी दे दी जाय तो वह विवेचन पाठकों द्वारा सरलता से समझा जा सकता है, किंतु यह तभी संभव है जब कि रचना थोड़ी हो। तुलसीदासजी के काव्य का गुण-दोष-विवेचन करने-वाला उनकी सम्पूर्ण रचनाओं को कैसे सम्मुख रख सकता है? रसखान की रचना थोड़ी है, अतः वह भी इसी पुस्तक में ले ली गई है। रसखान की रचना है तो थोड़ी किंतु है उच्च कोटि की इतनी ही रचना के बल पर ये हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हो गये।

इनकी रचना रस की ऐसी खान है जो कभी रिक्त नहीं हो सकती, उसमें से रस का निर्मल स्रोत सतत बहता रहेगा। धन्य हो रसखान! मुसलमान होकर भी तुम कृष्ण-प्रेम में ऐसे पगे कि अगणित हिंदू भक्तों के सिरमौर हो गये। रसखान की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है, अतः अधिक न कहकर यही कहेंगे कि पाठक उनकी रचना को पढ़ें और देखें कि उनका हृदय रसप्लावित होता है अथवा नहीं।

भूमिका

भगवान राम में जितनी मर्यादा है, श्रीकृष्ण में उतनी ही सरसता है। यद्यपि राम-श्याम में मैं कोई भेद नहीं समझता और है भी नहीं, किन्तु इसी सरसता के कारण मेरा झुकाव कृष्ण की ओर कुछ अधिक है। क्या किया जाय, हृदय ही तो है। कृष्ण की वह सरसता मुझे रसखान के सवैयों में पूर्णरूप में दिखाई दी। रसिक रसखान का एक-एक सवैया मेरे हृदय में घर करता गया। अतः एम० ए० (हिंदी) की परीक्षा में अनिवार्य विस्तृत निबंध के लिये मैंने रसखान के सरस काव्य को ही चुना। वही निबंध पुस्तक के रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

किसी भी रचना के गुण-दोष-विवेचन के साथ ही यदि वह रचना भी दे दी जाय तो वह विवेचन पाठकों द्वारा सरलता से समझा जा सकता है, किंतु यह तभी संभव है जब कि रचना थोड़ी हो। तुलसीदासजी के काव्य का गुण-दोष-विवेचन करने-वाला उनकी सम्पूर्ण रचनाओं को कैसे सम्मुख रख सकता है? रसखान की रचना थोड़ी है, अतः वह भी इसी पुस्तक में ले ली गई है। रसखान की रचना है तो थोड़ी किंतु है उच्च कोटि की इतनी ही रचना के बल पर ये हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हो गये।

इनकी रचना रस की ऐसी खान है जो कभी रिक्त नहीं हो सकती, उसमें से रस का निर्मल स्रोत सतत बहता रहेगा। धन्य हो रसखान! मुसलमान होकर भी तुम कृष्ण प्रेम में ऐसे पगे कि अगणित हिंदू भक्तों के सिरमौर हो गये। रसखान की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है, अतः अधिक न कहकर यही कहेंगे कि पाठक उनकी रचना को पढ़ें और देखें कि उनका हृदय रसप्लावित होता है अथवा नहीं।

रसखान की रचना के प्राय सभी सग्रह मैंने देखे है और उन सब को सामने रखते हुए जो पाठ सयत समझ पडा उसी को रक्खा है। कहीं कहीं चारो से मतभेद होने के कारण भिन्न पाठ रखना पडा है। 'प्रेमबाटिका के सबध मे एक बात कहनी है, वह यह कि अन्यसग्रहकर्ताओ ने रसखान के सभी दोहो को 'प्रेम-बाटिका मे रख दिया है। कुछ दोहे ऐसे हैं जो रसखान की इतिवृत्ति से सबध रखते है, उनका भला 'प्रेमबाटिका' मे क्या काम? मालूम होता है किशोरीलालजी गोस्वामी को जितने भी दोहे मिले सब को प्रेमबाटिका म रख दिया, और फिर उनके परवर्ती सपादको ने बिना सोचे-समझे उन्हे ज्यो का त्यो उतार लिया। ध्यान देने की बात है कि निम्नाकित दोहा क्या 'प्रेमबाटिका' मे स्थान पाने योग्य है?

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बस की, ठसका छाँडि रसखान॥

इसमे स्पष्ट है कि यह रसखान ने अपने मन को सतोष देने के लिये बनाया है, न कि 'प्रेमबाटिका' मे रखने के लिये। इसी प्रकार के और भी दस-पाँच दोहे हैं, जिन्हे मैंने 'प्रेमबाटिका' से अलग करके परिशिष्ट मे रख दिया है।

इस निबध के लिखने मे मुझे पूज्य गुरुवर प० विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र, एम० ए० से बहुत कुछ सहायता मिली है। यो तो शिष्य होने के नाते मैं सदा उनका आभारी हूँ, किंतु इस सहायता के लिए विशेषरूप से उनका कृतज्ञ हूँ।

चद्रशेखर पाडे

१. संक्षिप्त परिचय

सामग्री की कमी हिंदी की अनेक विभूतियों का स्वरूप स्पष्ट नहीं है। महात्मा तुलसीदास, भक्तवर सूरदास जी आदि तक का जीवन-चरित्र जानने के लिए अनुमान ही का अधिक सहारा लेना पड़ता है। हिंदी क्या यह समस्त भारतीय वाङ्मय की विशेषता है कि इसमें प्रणेता के जीवनवृत्त की अपेक्षा उसकी कृति को ही अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अस्तु, मुसलमान भक्तशिरोमणि, कृष्ण के अनन्य प्रेमी कविवर रसखान की जीवनी पूर्णरूप में ज्ञात नहीं है। इसका उत्तरदायित्व स्वयं कवियों पर तथा उनके समकालीन विद्वानों पर है। प्राचीन काल में आधुनिक काल की-सी जीवनवृत्त सुरक्षित रखने की कोई परिपाटी नहीं थी जिसके अनुसार कवियों के समय स्थान तथा जीवनगाथा का क्रमबद्ध तथा प्रामाणिक संग्रह प्रस्तुत किया जाता। जनता तो केवल कवि की कृति-सरस्वती में सानंद मज्जन करना जानती थी। आज तीन सौ वर्ष बाद रसखान की यथार्थ जीवनी का पता लगाना समुचित सामग्री के अभाव में कठिन हो गया है, अत अनुमान का सहारा लेने के अतिरिक्त अन्य साधन ही क्या है?

वंश-परिचय भक्तकवि रसखान की स्थूल जीवनी कुछ तो अंत साक्ष्य तथा कुछ बहि साक्ष्य के आधार पर जानी जा सकती है। रसखान की कुछ रचनाएँ उनके जीवन से संबंध रखती हैं। उनका कुछ जीवनवृत्त २५२ वैष्णवों की वार्ता में मिलता है। बहुत थोड़ा परिचय 'भक्तमाल' तथा 'शिवसिंहसरोज' में दिया गया है, जो इधर के ग्रंथ हैं। कुछ बातें जनश्रुतियों के आधार पर भी अनुमित हो सकती हैं। रसखान रचित 'प्रेम-वाटिका' में एक दोहा है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छाँड़ि रसखान।।

इससे यह पता चलता है कि ये बादशाह-वंश के थे। भले ही इनका अत्यन्त निकट का संबंध न रहा हो, पर दोहे से यह सिद्ध है कि इनका दूर का संबंध बादशाह-वंश से अवश्य रहा होगा। यदि ये राजकुल के बहुत निकट के होते तो 'ठसक छाँड़ि' के स्थान पर 'आन छाँड़ि' लिखते। राजकुल के केवल दूरवर्ती संबंधियों में ही उसकी कोरी ठसक रह जाती है। दूसरी बात यह भी है कि निकटवर्ती संबंधी होने पर शायद इतने शीघ्र ठसक छोड़ भी न सकते थे। ये पठान कहे जाते हैं और इनकी उपाधि सैयद बतलाई जाती है।

जन्मस्थान— इनके जन्मस्थान का पूर्ण निश्चय तो नहीं हो सका किंतु अधिकांश मतों से ये दिल्ली के कहे जाते हैं। 'शिवसिंह-सरोज' में इनका जन्मस्थान पिहानी दिया हुआ है। इस मत को भी कुछ विद्वान मानते हैं। ऊपर के दोहे में दिल्ली शब्द पड़ा हुआ है। इससे स्पष्ट है कि जिस समय इन्होंने ठसक छोड़ी उस समय ये दिल्ली में थे। संभव है इनका मूल स्थान पिहानी रहा हो और पठानों के समय में इनके पूर्वज दिल्ली में जा बसे हों और मुगलों के समय में पठानों की शक्ति घटती देखकर ये व्यथित हुए हों।

जन्म संवत्— न तो स्वयं रसखान ने और न अन्य किसी तत्कालीन लेखक ने इनके जन्म-संवत् के विषय में लिखा है। यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने श्री वल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी। विट्ठलनाथ जी की मृत्यु सं० १६४२ वि० में हुई, अतः स्पष्ट है कि इन्होंने इसके पूर्व ही किसी समय दीक्षा ली। यदि यह अनुमान किया जाय कि इन्होंने सं० १६४० में दीक्षा ली होगी और उस समय इनकी अवस्था २५ वर्ष की मानी जाय तो इनका जन्म-संवत् १६१५ के लगभग ठहरता है। यही संवत् प्रायः सभी वर्तमान साहित्य-इतिहासकारों ने माना है, अतः

जब तक पुष्ट प्रमाण के साथ कोई अन्य जन्म-संवत् नहीं मिलता तब तक सं० १६१७ ही मानना उचित है। इसमें संदेह की बात नहीं है कि दीक्षा इन्होंने युवावस्था में ली थी वृद्धावस्था में नहीं क्योंकि इनके जीवन-चरित्र से सिद्ध है कि जिस समय ये एक वणिक-पुत्र पर आसक्त थे उस समय कुछ वैष्णवों के उपदेश से या अन्य किसी कारण से वे वृन्दावन गए और वहाँ दीक्षित हुए। ऐसी स्थिति में दीक्षा के समय उनकी अवस्था २८ वर्ष की मानना संगत ही है।

नाम यह तो निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि रसखान काव्य में प्रयुक्त कवि का उपनाम है। इनका वास्तविक नाम क्या था इसका ठीक पता नहीं चलता। शिवसिंह सेंगर ने इनका नाम सैयद इब्राहीम लिखा है। यही नाम साहित्य, इतिहासों या इनकी कविता-पुस्तकों के संपादकों द्वारा दिया गया है। स्वयं इन्होंने अपने नाम का कहीं कोई संकेत नहीं किया। ब्रज-साहित्य में वे 'रसखान' नाम से प्रसिद्ध हुए और रसपूर्ण कविता के कारण इस नाम का इतना महत्त्व बढ़ा कि 'रसखान' शब्द सरस-कविता का पर्याय हो गया। आश्चर्य की बात नहीं, यदि उनके समय में भी लोग रसखान का नाम न जानते रहे हों। पहिले कहा जा चुका है कि नाम से बड़ा काम होता है।

बाल्यकाल तथा शिक्षा स्वयं रसखान के कथनानुसार ये बादशाह-वंश के थे, अतः यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि इनका बाल्यकाल बड़े लाड़-प्यार में बीता होगा। इनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबंध रहा होगा। संभवतः ये लड़कपन में ही बड़ी तीव्र बुद्धि के रहे होंगे। इन्हें फारसी की उच्च-शिक्षा मिली होगी। यह जनश्रुति भी है कि इन्होंने श्रीकृष्ण के स्वरूप का परिचय भागवत के फारसी अनुवाद से प्राप्त किया था। अतः जान पड़ता है कि ये बड़े विद्यानुरागी तथा अध्ययनशील थे। इनकी 'प्रेमवाटिका' में स्वाभाविक, अनन्य, श्रुतिसार, मधुकर-निकर

मात्सर्य तथा मुनिवर्य आदि तत्सम शब्दो को देखने से पता चलता है कि इन्हे सस्कृत का भी अच्छा बोध था।

ससार से विरक्ति तथा कृष्ण-प्रेम का कारण इनके कृष्णभक्त होने के सबध मे कई जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोकुलनाथ जी ने '२५२ वैष्णवो की वार्ता' मे २१८ वी सख्या पर रसखान की भगवद्भक्ति के कारण का उल्लेख किया है जो नीचे उद्धृत किया जाता है—

"सो वा दिल्ली मे एक साहूकार रहेतो हतो।। सो वा साहुकार को बेटा बहुत सुन्दर हतो।। वा ठौर सो रसखान को मन बहुत लग गयो।। वाही के पाछे फिरया करे और वाको जूठा खावे और आठ पहर वाही की नोकरी करे।। पगार कुछ लेवे नही दिन रात वाही मे आसक्त रहे।। दूसरे बडी जात के रसखान की निंदा बहुत करते हते।। परन्तु रसखान काई कू गगने नही हते।। और अष्ट पहेर वा साहुकार के बेटा मे चित्त लग्यो रहेतो।। एक दिन चार वैष्णव मिल के भगवद्वार्ता करते हते।। करते करते ऐसी बात निकसी जो प्रभु मे चित्त ऐसा लगावना।। जैसे रसखान को चित्त साहुकार के बेटा मे लग्यो है।। इतने मे रसखान ये रास्ता निकस्यो विनने ये बात सुनी।। तब रसखान ने कही जो तुम मेरी कहा बात करोहो।। तब वैष्णवन ने जो बात हती सो बात कही।। तब रसखान बोले प्रभू को स्वरूप दीखे तो चित्त लगाईये।। तब वा वैष्णव ने श्रीनाथ जी को चित्र दिखायो।। सो देखतहि रसखान ने वो चित्र ले लियो और मन मे ऐसो सकल्प करचो जो ऐसे स्वरूप देखनो जब अन्न खानो जहा सु घोडा पर बैठ के एक रात्र मे वृन्दाबन आयो।। और आखो दिन सब मदिरन मे वेष बदलाय के फिरचो। और सब मदिरन मे दर्शन किये और वैसे दर्शन नही भये तब गोपालपुर मे गयो।। और वेष बदलाय के श्रीनाथ जी के दर्शन करवे कू गयो।। तब सिंघपोरिया

ने भगवदिच्छा सु वाके चिह्न बडी जात वाले के पहचाण्ये ।। तब वाकु धक्का मार के काढ दियो ।। सो जाय के गोविंदकुंड पर पड रह्यो ।। तीन दिन सूधी पड रह्यो ।। खावे पीवे की कछु अपेक्षा राखी नाही । तब श्रीनाथ जी ने जानी ये जीव दैवी है ।। और शुद्ध है और सात्विक है मेरो भक्त है याकु दर्शन देउ तो ठीक ।। तब श्रीनाथ जी ने दर्शन दये ।। तब वे उठ के श्रीनाथ जी कु पकडवे दौर्यो ।। सो श्रीनाथ जी भाग गये फेरें श्रीनाथ जी श्री गुसाइँ जी सु कही ये जीव दैवी है ।। और म्लेच्छ योनि कु पायो है ।। जासु याके ऊपर कृपा करो याकु शरण लेउ ।। जहाँ सूधी तुमारो सबंध जीव कु नहीं होवे तहा सूधी मैं वा जीव कु स्पर्श नहीं करू हू वासु बोलु नहीं हुँ ।। और वाके हाथ को खात्रु हू नहीं जासु आप याको अंगीकार करो ।। तब श्री गोसाईं जी श्रीनाथ जी के वचन सुन के गोविंदकुण्ड मे पधारे और वाकु नाम सुनाये ।। और साक्षात् श्रीनाथ जी के दर्शन श्री गुसाईं जी के स्वरूप मे वाकु भये ।। तब श्री गुसाईं जी विनकु संग ले के पधारे और उत्थापन के दर्शन कराये ।। महाप्रसाद लिवायो ।। तब रसखान जी श्रीनाथ जी के स्वरूप मे आसक्त भये ।। तब वे रसखान ने अनेक कीर्तन और कवित्त और दोहा बहोत प्रकार के बनाये ।। जैसे जैसे लीला के दर्शन विनकु भये ।। वैसे ही वर्णन किये । सो वे रसखान श्री गुसाईं जी के ऐसे कृपापात्र हते ।। जिनको चित्र के दर्शन करतमात्र ही संसार मे सु चित्त खेचाय के और श्रीनाथ जी मे लग्यो इनके भाग्य की कहा बडाई करनी ।"

यदि उपर्युक्त उद्धरण की सभी बातो पर विश्वास न करे तो इतना निष्कर्ष तो अवश्य निकलता है कि रसखान किसी वैश्यपुत्र के लौकिक प्रेम पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर चुके थे वही लौकिक प्रेम भगवद्भक्ति मे परिणत हो गया । फलस्वरूप आपने विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली ।

स्त्री पर अनुरक्ति दूसरी जनश्रुति यह है कि रसखान किसी स्त्री पर अनुरक्त थे वह बड़ी मानिनी थी, बात-बात में रूठ जाया करती थी। उसके द्वारा अपमान सहकर भी ये उसके प्रेम में लगे रहे। एक दिन ये श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे। गोपियों का विरह वर्णन पढ़ते-पढ़ते इनके मन में अकस्मात् यह बात आई कि जिस नंदनंदन पर सहस्रों गोपियाँ न्यौछावर थीं, उन्हीं से मन क्यों न लगाया जाय। अतः ये दिल्ली छोड़कर वृन्दावन आ बसे और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गये। कहा जा सकता है कि 'प्रेमवाटिका' का निम्नांकित दोहा इसी घटना की ओर संकेत करता है।

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहि लखि, भये मिया 'रसखान'॥

कथा से चित्र-दर्शन तीसरी जनश्रुति यह है कि एक स्थान पर श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी। वहाँ पर मुरली मनोहर का एक मनोरम चित्र भी सजाया हुआ रक्खा था। संयोग से एक दिन रसखान भी वहाँ पहुँच गये। श्यामसुन्दर की बाँकी-झाँकी देखकर वे उस पर मोहित हो गये। कथा के अंत में उन्होंने पंडित जी से पूछा कि यह साँवली-सलोनी मनमोहनी मूर्ति किसकी है? पंडित जी ने कहा कि जो संपूर्ण रसों की खान है उन्हीं रसखान श्रीकृष्णचन्द्र जी की यह मूर्ति है। रसखान ने फिर पूछा, 'ये कहाँ रहते हैं'? पंडित जी ने बताया 'यों तो ये सर्वव्यापी हैं किन्तु विशेष कर वृन्दावन में रहते हैं।' बस रसखान सब कुछ छोड़-छाड़कर वृन्दावन चले गये और वहाँ मंदिर के सामने तीन दिनों तक अनशन करके भगवान के दर्शन प्राप्त किये और फिर वहीं रहने लगे। इनके 'रसखान' नाम रखने का कारण भी यही ज्ञात होता है कि इन्हें रसखान श्रीकृष्ण प्रिय लगे थे, अतः इन्होंने कविता में अपनी छाप 'रसखान' ही रक्खी।

हज-यात्रा यथा जनश्रुति के अनुसार रसखान एक बार अपने अन्य कई मित्रो के साथ हज करने जा रहे थे। रास्ते मे जब वृन्दावन मे ठहरे तो श्री कृष्ण के चरणो मे इनका अनुराग हो गया। अकस्मात् अनुराग होने का कारण स्पष्ट नही है। सभव है फारसी का अनुवाद पढने या वही कही श्रीकृष्ण-चित्र दर्शन म ही हुआ हो। प्रात काल इन्होने अपने साथियो से कहा कि आप लोग हज करने जायँ मैं तो ब्रज छोडकर अब कही न जाऊँगा। मित्रो के बहुत समझाने पर भी जब इन्होने एक की न सुनी तो वे लोग चले गये और रसखान वृन्दावन मे ही रहकर श्री कृष्ण की भक्ति करने लगे। धीरे-धीरे यह समाचार बादशाह तक पहुँचा। कुछ लोगो ने आकर रसखान से कहा 'बादशाह आपको काफिर समझकर आप से बहुत अप्रसन्न है वे आपकी सारी सम्पत्ति हरण कर लेगे।' इस पर रसखान ने बडी लापरवाही के साथ कहा—

कहा करै 'रसखान' को, कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है, माखन-चाखनहार॥

—प्रेमबाटिका

अपनी समझ मे यह कथा इसी दोहे को देखकर गढी हुई जान पडती है। कई जनश्रुतियो तथा '२५२ वैष्णवो की वार्ता' के आधार पर यह प्रमाणित है कि रसखान का पूर्व-जीवन सयत न था, वे किसी सुन्दर वैश्य-पुत्र अथवा मानवती स्त्री पर अनुरक्त थे, लौकिक प्रेम मे पूर्णरूप से फँसे हुए थे। ऐसी दशा मे उनका हज करने जाना समीचीन नहीं जान पडता। दीक्षा के समय उनकी आयु लगभग २५ वर्ष की थी, ऐसी पूर्ण यौवनावस्था मे उन्हे हज करने की कैसे सूझ सकती है? सभव है कि उपर्युक्त अनेक कारणो मे से किसी कारण से जब ये कृष्ण-प्रेम मे रँगकर वृन्दावन मे रहने लगे होगे तब कुछ कट्टर मुसलमानो को इनका काफिर या

बुतपरस्त हो जाना बुरा लगा होगा और उन लोगो ने बादशाह से चुगली की हो जिसे सुनकर बादशाह अप्रसन्न हुआ हो और यह समाचार फिर उन लोगो ने रसखान को दिया हो जिस पर रसखान ने उपयुक्त दोहा कहा हो। पूर्वापर प्रसग निरूपन के लिये ही यह हज-यात्रा की कथा जोडी हुई मालूम होती है।

दीक्षोपरात का जीवन तथा जीविका दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वे पूर्ण वैष्णव हो गये। मुसलमानपने को छोडकर एक भक्त हिन्दू साधु का जीवन व्यतीत करने लगे। ये सदा कृष्ण-भक्ति तथा उपासना म लीन रहते थे। साधुओ का सत्सग इनके जीवन का प्रधान कार्य था। कृष्ण प्रेम म मग्न होकर कवित्त-सवैया बनाते थे और गा गाकर आनन्द-मग्न हो जाया करते थे। वैष्णवो मे इनका अच्छा मान था। बादशाह द्वारा सपत्ति छिन जाने के पहले ही इन्होने सारी सपत्ति को मिट्टी समझकर त्याग दी और एक सच्चे साधु की भाति भगवान के भोग के प्रसाद से ही जीवन-निर्वाह करते थे।

मृत्यु-काल जन्म-तिथि की भाँति इनकी मृत्यु-तिथि भी अज्ञात तथा अनिश्चित है। 'प्रेमबाटिका' मे इन्होने उसका निर्माण-काल निम्नलिखित दोहे मे दिया है—

बिधु[१] सागर[७] रस[६] इंदु[१] सुभ, बरस सरस 'रसखान'।
प्रेमबाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान॥

'**अकानावामतो गति**' के अनुसार बिधु, सागर, रस, इंदु से स० १६७१ निकलता है। इससे स्पष्ट है कि इनकी मृत्यु इसके अनतर ही हुई होगी। यदि इनकी आयु अनुमानत कम से कम ६० वर्ष की मान ले तो इनकी मृत्यु १६१५+६०=स० १६७५ मे या इसके लगभग हुई होगी।

कुछ अन्य विचारणीय बातें

विवाह रसखान के कौटुम्बिक जीवन का कहीं कुछ भी पता नहीं चलता। पता नहीं वैराग्य के पूर्व रसखान का विवाह हुआ था या नहीं? कोई सन्तान थी या नहीं? विचार करने से विदित होता है कि इनका विवाह न हुआ रहा होगा। विवाह हुआ होता तो इनकी स्त्री या सन्तान का कुछ वर्णन अवश्य कहीं मिलता। इनके वैराग्य लेने पर इनके ससुराल के लोग अवश्य इन्हें मनाने आते और इस पर रसखान अवश्य कुछ रचना करते, किंतु इस संबंध का उनका एक भी छंद नहीं मिलता। 'तोरि मानिनी तें हियो फोरि मोहिनी मान' से यदि मानिनी और मोहिनी से पत्नी की ओर संकेत समझा जाय तो सम्भव है कि वैश्य-पुत्र पर आसक्त रहने के कारण इनकी पत्नी सदा इनसे रूठी रहती रही हो और इनकी भर्त्सना करती रही हो। फिर भी कोई पत्नी केवल इसी कारण से अपने पति से इतना नहीं रूठ सकती कि उसके वैराग्य लेने पर वह चुपचाप रहे।

सौंदर्य-प्रेम ये सौंदर्योपासक थे, इसमें तो कोई संदेह नहीं। जनश्रुति के अनुसार वैश्य-पुत्र या स्त्री पर इनका प्रेम साहचर्यगत नहीं सौंदर्यगत ही बताया जाता है। 'मोहिनी-मान' का अर्थ रूप का जादू ही है जब सौंदर्य-निधान मन-मोहन मुरलीधर की छवि देखी तो उन्हीं पर अनुरक्त हो गये। सम्भव था कि किसी अन्य देवता का चित्र कृष्ण-चित्र से अधिक सुन्दर देखते तो उसी पर लट्टू हो जाते। श्रीकृष्ण के प्रेम का कारण रूप ही था, यह इनके दोहों से ही प्रमाणित हो जाता है, यथा—

देख्यो रूप अपार, मोहन सुन्दर श्याम को।
वह ब्रज-राजकुमार, हिय जिय नैननि मे बस्यो॥

\+ + +

प्रेमदेव की छविहिं लखि, भये मिया 'रसखान'॥

उपास्य-देव ये वल्लभ-सम्प्रदाय मे दीक्षित हुये थे वल्लभ-सम्प्रदाय के उपास्यदेव बाल-गोपाल है, किंतु इनके उपास्यदेव गोपिकारमण कुजबिहारी-श्रीकृष्णचन्द्र जी है। यद्यपि बाललीला के भी दो एक छद इन्होने रचे है किन्तु प्राय सारी रचना यौवन लीला की ही है। इन्हे रमानेवाली कृष्ण की यौवन-लीला ही थी।

दिल्ली का गदर इन्होने एक दोहे मे लिखा है देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान किंतु इनके समय दिल्ली म ऐसा कोई राज-विप्लव नहीं हुआ था जिसमे दिल्ली नगर श्मशान हो गया हो। इन्होने स० १६४० के लगभग दीक्षा ली थी, यह अनुमान किया था। उस समय दिल्ली के सिहासन पर सम्राट् अकबर सुशोभित थे। अकबर के सौतेले भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम ने जो काबुल का शासक था दरबारियो द्वारा उभाडे जाने पर कुछ थोडा-सा उपद्रव किया था। वह दिल्ली के सिहासन पर स्वय अधिष्ठित होना चाहता था। उसी को दबाने के लिये अकबर ने स० १६३८ मे अफगानिस्तान पर आक्रमण किया था और स० १६४२ मे मिर्जा की मृत्यु के पश्चात् उसका राज्य भी अपने राज्य मे मिला लिया था। सभवत परस्पर के इसी वैमनस्य और द्वेष के कारण कुछ अशाति हुई हो। मुहम्मद हकीम के षड्यत्र म दिल्ली के भी कई अमीर सम्मिलित थे, जिनका नेता स्वय अकबर का मत्री शाहमसूर था। हकीम ने पजाब पर चढाई कर दी थी। अकबर उस समय बगाल मे था, वह वहाँ से लौटा और दिल्ली आकर वहाँ से हकीम को दबाने के लिए चला। साथ मे शाहमसूर भी था। अकबर को षड्यत्र का पता चल गया और उसने रास्ते ही मे उसे फाँसी दे दी। सभव है और षडयत्रकारी दिल्ली मे ही मारे गये हो और इनके किसी परिचित पर भी आँच पहुँची हो अत रसखान ने उसे गदर लिख दिया हो और दिल्ली को श्मशान बनाया हो।

नवीन इतिहास ग्रन्थो के अतिरिक्त कई स्थानो पर पुराने ग्रन्थो तथा

रचनाओं आदि में भी रसखान का वर्णन मिलता है। '२५२ वैष्णवों की वार्ता' का उल्लेख पहले दिया जा चुका है। कुछ अन्य स्थलों में भी आवश्यक उद्धरण दिये जाते हैं।

श्रीशिवसिंह सेंगर ने अपने शिवसिंहसरोज में रसखान का वर्णन इस प्रकार किया है—

शिवसिंहसरोज "रसखान कवि सय्यद इब्राहीम पिहानी वाले, सं० १६३० में उ०। ये मुसलमान कवि थे। श्री वृन्दावन में जाकर कृष्णचंद्र की भक्ति में ऐसे डूबे कि फिर मुसलमानी धर्म त्याग कर मालाकंठी धारण किये हुये वृन्दावन की रज में मिल गये। इनकी कविता निपट ललित माधुरी से भरी हुई है। इनकी कथा भक्तमाल में पढ़ने योग्य है। भक्तमाल से इनका तात्पर्य '२५२ वैष्णवों की वार्ता' से है क्योंकि कथा तो इसी में है और भक्तमाल में तो प्रशंसा के दो चार शब्द हैं।

गोस्वामी राधाचरण ने 'अपने नवभक्तमाल' में लिखा है—

नवभक्तमाल दिल्ली नगर निवास बादसा-बंस-बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो, भरो पन प्रेम-सुधाकर॥
श्रीगोवर्द्धन आय जबै दरसन नहिं पाये।
टेढ़े मेढ़े बचन रचन निर्भय ह्वै गाये॥

तब आप आय सुमनाय करि सुश्रूषा महमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै श्रीनाथ साथ रसखान की॥

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने भी 'भक्तमाल' के उत्तरार्द्ध में अन्य मुसलमान भक्तों के साथ इनका नाम लिया है—

भक्तमाल 'अलीखान पाठान सुता सह ब्रज रखवारे।
सेख नबी रसखान मीर अहमद हरि प्यारे॥

निरमलदास कबीर ताज खाँ बेगम प्यारी।
तानसेन कृष्णदास बिजापुर नृपति दुलारी॥

पिरजादी बीबी रास्तो पदरज नित सिर धारिए।
इन मुसलमान हरिजनन पैं कोटिन हिंदू वारिए॥'

मूलगुसाईं चरित बाबा बेणीमाधवदास के नाम से जो 'मूलगुसाईं-चरित' प्रकाशित हुआ है, उसमे लिखा है कि सं० १६३३ मे जब गोस्वामी तुलसीदास जी का 'रामचरितमानस' समाप्त हुआ है तो सबसे पहले वही मिथिला के रूपारुण स्वामी ने उसे सुना, उनके पीछे नंदौला-निवासी नंदलाल स्वामी तथा रसखान ने सुना। यथा—

स्वामि नंद सुलाल को शिष्य पुनी। तिसु नाम दयाल सुदास गुनी॥
लिखि कै स्वइ पोथी स्वठाम गयो। गुरु के ढिग जाय सुनाय दयो॥
यमुना तट पैं त्रय बत्सर लौं। रसखानहिं जाय सुनावत भो॥

उपर्युक्त चौपाइयो मे स्पष्ट है कि सं० १६३४ से सं० १६३८ तक रसखान ने यमुना-तट पर नंदौलि के दयालदास से 'मानस' सुना। किंतु 'मूलगुसाईं-चरित' को विद्वान जाली तथा अप्रामाणिक मानने लगे है। रसखान का जन्मकाल सं० १६१५ माना गया है, ऐसी दशा मे सं० १६३४ मे उनकी अवस्था केवल १९-२० वर्ष की ठहरती है। इस अवस्था मे उनका यमुना तट पर ३ वर्षों तक 'मानस' सुनना असगत मालूम पड़ता है। उस समय तो वे वैश्य-पुत्र या स्त्री पर अनुरक्त रहे होंगे।

इन सब बातो पर विचार करने से इतना ही पता चलता है कि रसखान का कविता-काल सं० १६४० है। जिस प्रकार हिंदी के अन्य प्राचीन कवियो का जीवनवृत्त ठीक-ठीक ज्ञात नही होता उसी प्रकार रसखान का जीवनवृत्त भी काल के गर्त मे विलीन हो गया।

२. तत्कालीन काव्यधारा का स्वरूप

भगवान ऐसे समय में हुए जब हिंदी-काव्य का परम उत्कर्ष हो चुका था। सम्राट अकबर के सुव्यवस्थित शासन के कारण जनता धन-माल से निश्चिंत होकर कला-प्रिय बन रही थी। उस समय सभी ललित कलाएं उन्नत अवस्था में थी। धार्मिक मामलों में अकबर की उदारता के कारण, चाहे वह व्यावहारिक ही क्यों न रही हो, भक्ति का एक प्रबल प्रवाह फूट निकला था। वह भक्तिकाल था, अनेक सम्प्रदाय आचार्यों द्वारा चलाये जा रहे थे और जनता बड़े आनन्द से अपनी अपनी रुचि के अनुसार किसी न किसी सम्प्रदाय की अनुयायी बन रही थी। कवियों का आदर केवल जन-समाज में ही नहीं राजदरबारों में भी होता था। अकबर के दरबार में बीरबल, गंग तथा रहीम ऐसे कवि सम्मान पा रहे थे। स्वयं अकबर भी कुछ कविता करता था।

महाप्रभु वल्लभाचार्य की शिक्षा का प्रभाव उत्तर भारत में भलीभांति पड़ चुका था। राधाकृष्ण की उपासना जोरों पर थी। प्रत्येक कवि राधा-कृष्ण की लीलाओं पर कविता करके लोकप्रिय बनना चाहता था। ब्रजभाषा का अखण्ड राज्य था, यद्यपि जायसी और तुलसीदास जी के अत्यन्त लोक-प्रसिद्ध ग्रन्थ अवधी भाषा में लिखे गये थे फिर भी उन दो एक ग्रन्थों के कारण अत्यन्त प्राचीन काल से काव्यभाषा के रूप में व्यवहृत होनेवाली ब्रजभाषा की प्रधानता में कोई अन्तर नहीं आ सका था। मुसलमान भी अपनी कट्टरता छोड़कर हिंदू भक्त और कवियों के स्वर में स्वर मिलाने लगे थे। भारतीय देवताओं के विषय में भारतीय भाषा द्वारा मुसलमान भी कविता करने में गौरव समझते थे। भाषा के माधुर्य तथा भावों के मोह ने बादशाह तक को ब्रजभाषा में रचना करने के लिये विवश कर दिया था।

रसखान के समय से कुछ ही पूर्व हिंदी कविता बहुमुखी हो चुकी थी। भिन्न-भिन्न विषय भिन्न-भिन्न शैलियों में व्यक्त करने की क्षमता रखने वाले कवियों का आविर्भाव हो चुका था। हिंदू-मुसलमान तथा जाति-वर्ण का भेद दूर कर एक ओर ज्ञानक्षेत्र में कविता को स्थान मिला और दूसरी ओर सूफियों की प्रेम-पीर सुनाई पड़ रही थी। नीति तथा अन्योक्तियों की छटा भी दिखाई दे रही थी और ब्रजकुजों की रासलीला का भी स्मरण किया जा रहा था। श्रीसीताराम जी की शुद्ध भक्ति करने वाले कवि भी थे तथा राधाकृष्ण के नाम की आड़ में घोर शृंगार वर्णन करने वाले रसिक भी। रीतिग्रन्थों की भी रचना इसी समय हुई। इन सभी काव्य-धाराओं का संक्षिप्त परिचय देकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा कि किस काव्यधारा का कितना प्रभाव रसखान पर पड़ा तथा किस धारा में रसखान पूर्णतः बहे।

वीर गाथाओं का अभाव यों तो किसी भी एक विशिष्ट काल में एक ही प्रकार की कविता नहीं हुई, सभी प्रकार की रचनाएं सभी काल में न्यूनाधिक मात्रा में प्रकाशित हुईं, किंतु इस काल में वीरगाथाओं की रचना का सर्वथा अभाव था। रीतिकाल में तो भूषण और लाल ऐसे वीर कवि हो भी गए हैं वीर गाथाओं की सृष्टि तभी संभव है जब लोक में संघर्ष चल रहा हो। विदेशी आक्रमण के समय अनेक वीरकाव्य बने। विदेशियों के यहाँ जम जाने के अनंतर दोनों जातियों का पार्थक्य दूर करने के प्रयत्न आरंभ हुये। कबीर तथा जायसी आदि के प्रयत्न इसी प्रकार के हैं।

ज्ञानाश्रयी शाखा रसखान के जन्म से लगभग ५० वर्ष पहले महात्मा कबीरदास जी विद्यमान थे और शुद्ध ज्ञान की शिक्षा से हिंदू-मुसलमान में एकता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके पश्चात् धर्मदास और गुरु नानक ने शुद्ध मानव-धर्म का प्रतिपादन किया। उस समय तक हिन्दू-मुसलमान अपनी-अपनी कट्टरता छोड़कर बहुत कुछ हिलमिल

गये थे। अतः रसखान को मुसलमान से हिन्दू होने में बहुत मानसिक विप्लव न करना पड़ा होगा। यदि उपर्युक्त महात्मागण अपनी कविता द्वारा ऐसा क्षेत्र प्रस्तुत न कर जाते तो रसखान सहसा धर्म बदलने में बहुत हिचकते। दादूदयाल जी रसखान के समकालीन ही थे।

इस शाखा के सन्तों ने दोहे तथा पद ही लिखे हैं। वर्ण्य विषय तो प्रायः सब का एक है किंतु भाषा क्रमशः सुधरती गई है। कबीर की भाषा खिचड़ी है। अधिक भ्रमण के कारण कई भाषाओं के शब्द उनकी कविता में अधिक मिलते हैं। छन्दशास्त्र का ज्ञान भी उन्हें न था, दोहे-सा साधारण छंद भी प्रायः अशुद्ध ही है। कबीर के पश्चात् धर्मदास की भाषा कुछ अधिक साफ है तथा उनसे भी परिष्कृत भाषा दादूदयाल की है। प्रधानता ब्रजभाषा की ही थी। दादूदयाल जी का जन्म सं० १६०१ तथा मृत्यु सं० १६६० में हुई थी।

प्रेममार्गी शाखा कबीर ने मनुष्यमात्र में अभेद अवश्य देखा था और उस अभेद का ज्ञान दूसरों को भी कराने का प्रयत्न किया था किंतु उनकी शिक्षा-पद्धति में वह आकर्षण और वह सहानुभूति न थी जो जनता के हृदय पर जमकर बैठ जाती है। उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों को जी भरकर झाड़-फटकार सुनाई जिसे ऊँचे उठे हुये कुछ ही लोग समझ सके और लाभ उठा सके, किंतु अधिकांश जनता में एक प्रकार की चिढ़-सी उत्पन्न हो गयी। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है उसे कबीर व्यक्त न कर सके। हिंदू-मुसलमान के हृदयों को मिलानेवाले प्रेममार्गी सूफी कवि ही थे, जिन्होंने हिन्दुओं की कहानियों को उन्हीं की बोली में बड़ी लगन के साथ कहा।

रसखान के जन्म से ५०-५१ वर्ष पूर्व कुतबन कवि ने 'मृगावती' नाम की कहानी लिखी थी। उसके बाद मझन कवि ने मधुमालती नाम की एक कहानी लिखी। ये आध्यात्मिक कहानियाँ विशेष लक्ष्य रखकर

लिखी गई थीं और रोचकता लाने के लिये तथा अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सर्वत्र रूप में हिन्दू पात्रों की कल्पना कर ली गई थी। इस शाखा के महाकवि जायसी रसखान से कुछ ही पहले हुये थे। सं० १६०० के लगभग उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' की रचना समाप्त की थी। सं० १६७३ में उसमान ने 'चित्रावली' नामक पुस्तक लिखी। आगे भी यह धारा बहती रही जिसमें शेख नबी, कासिमपाशा तथा नूरमुहम्मद आदि कवि हुये, जिन्होंने सामाजिक प्रेम-वर्णन द्वारा आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन किया। इस शाखा के सभी कवियों ने अपने ग्रन्थों के लिए अवधी भाषा चुनी, यद्यपि वह अधिक परिष्कृत न हो बोलचाल की ही अवधी थी। सभी कवियों ने दोहे-चौपाई में अपनी कहानी कही। इन कवियों के प्रेम की पीर का प्रभाव कुछ अंश में रसखान पर भी पड़ा था। अन्तर केवल इतना ही था कि सूफियों का विरह निर्विकार, निराकार, परमब्रह्म परमात्मा के लिए था और रसखान का विरह साकार, सगुण भगवान श्रीकृष्ण के लिये था। प्रेम-पीर की तीव्रता दोनों में समान थी। जायसी कहते हैं—

का भा पढ़े गुने अउ लीखे। करनी साथ किये अउ सीखे॥
आपुइ खोइ उहइ जो पावा। सो बोरउ मन लाइ जनावा॥
जो वहि हेरत जाय हिराई। सो पावइ अमिरित, फल खाई॥

—पद्मावत

और रसखान भगवत प्रेम को ही भगवत-रूप समझकर कहते हैं—

शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान॥
प्रेम-फाँसि में फँसि मरै, सोई जिये सदाहिं।
प्रेम-मरम जाने बिना मरि कोउ जीवत नाहिं॥

—प्रेमवाटिका

रामभक्ति-शाखा। भक्तिकाल की रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखाएँ समानान्तररूप से चल रही थीं। दोनों शाखाओं को अनेक कवि अपनी रचनाओं द्वारा पुष्ट कर रहे थे। रसखान कविकुल-कमल दिवाकर गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे। बाबा वेणीमाधवदास के 'मूलगुसाईं-चरित' के अनुसार तो रसखान ने गोस्वामी जी का मानस यमुना तट पर तीन वर्ष तक सुना था। गोस्वामी जी ने ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं में गीत, बरवै, छप्पय, कवित्त-सवैया तथा दोहे-चौपाई की भिन्न-भिन्न शैलियों में रचना करके अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया। तुलसीदास जी के अतिरिक्त स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान आदि कवि रसखान के समय में वर्तमान थे जो अपनी कविता से राम-भक्ति-शाखा का साहित्य-भंडार भर रहे थे।

कृष्णभक्ति-शाखा। महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा चलाया हुआ वल्लभ-सम्प्रदाय अत्यन्त प्रभावशाली तथा व्यापक हो चला था। लोग राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं में तन्मय हो रहे थे। मुसलमानी दरबार की विलासिता तथा ठाट-बाट के संपर्क में आने से लोग शृंगारी भावों को अधिक पसन्द करते थे। ऐसे शृंगारी कवियों की, जो वास्तव में राधाकृष्ण के नाम से नायक-नायिका का प्रेम वर्णन करते थे, एक अलग परंपरा चली किन्तु पहले खेवे में, जो रसखान का समय था, बड़े ऊँचे-ऊँचे कृष्णभक्त तथा कवि हो गये हैं। कविशिरोमणि भक्त-प्रवर सूरदास जी अपने 'सूरसागर' की रचना कर चुके थे। सूरदास जी की मृत्यु के समय रसखान की आयु लगभग ५ वर्ष की थी। अष्टछाप के आठों कवि अपनी-अपनी वाणी से पीयूष-वर्षा कर रहे थे। ब्रजभाषा का अधिकांश भंडार उसी समय भरा गया था। भक्तवर श्री हितहरिवंश जी तो अपनी मधुर कविता के कारण श्रीकृष्ण की बंशी के अवतार कहे जाते थे। इनका रचना-काल सं० १६०० से १६४० तक माना जाता है। कृष्ण-प्रेम में मतवाली मीरा का भी समय

रसखान के कुछ ही पहले का है। इन महात्माओं के अतिरिक्त गदाधर भट्ट स्वामी हरिदास, सानुसेवी सूरदास मदनमोहन, श्रीभट्ट तथा श्रीहरीराम व्यास आदि कृष्ण-भक्तकवि हो गये हैं। इन सभी महात्माओं ने कृष्ण-सबन्धी मधुर, सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि भावों को पदों में व्यक्त किया है। एक तो भक्त सूरदास जी से ही कोई भाव नहीं छूटने पाया, अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने सभी प्रकार के अनूठे भावों की कल्पना कर डाली, दूसरे इन अनेक भक्तों तथा कवियों ने भी अपनी-अपनी अनूठी कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय दिया। कृष्ण-साहित्य उस समय सर्वथा पूर्णता को प्राप्त हो गया था। बाद में जो कृष्ण-साहित्य प्रस्तुत हुआ, वह उस कोटि का नहीं हो सका। इस समय के श्रेष्ठ कवि श्री नरोत्तमदास जी का नाम नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने 'सुदामा-चरित्र' लिखकर असंख्य निर्धनों को भगवान् पर विश्वास रखना सिखाया। इनका समय सं० १६०२ माना जाता है। नरोत्तमदास जी ने अपनी रचना दोहों और सवैयों में की है ठीक यही शैली आगे चलकर रसखान ने ग्रहण की।

नीति विषयक रचनाएं रहीम कवि, जिनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था, रसखान के समकालीन थे। रहीम रसखान से केवल २ वर्ष बड़े थे। इनके नीति विषयक दोहे बड़े मार्मिक तथा तथ्यपूर्ण हैं। यद्यपि इन्होंने 'बरवै नायिका भेद' तथा कुछ फुटकर पद, कवित्त आदि भी लिखे हैं, किन्तु इनके दोहे ही अधिक प्रसिद्ध हैं। भाषा पर इनका अधिकार तुलसीदास जी ऐसा ही था। छंद बहुत शुद्ध हैं। इन्होंने भ्रमण बहुत किया था और अपने जीवनकाल में अनेक परिवर्तन देखा था अतः इनका अनुभव बड़ा विस्तृत था। यही कारण है कि ये नीति पर इतने अच्छे दोहे कह सके हैं। ये उस समय के श्रेष्ठ कवि थे।

रीति-ग्रन्थकार यद्यपि रसखान का समय भक्तिकाल के ही अन्तर्गत आता है और रीतिकाल श्रीचिंतामणि त्रिपाठी (सं १७००) से आरंभ

होता है, फिर भी रसखान के समय में कुछ ऐसे कवि हुये है जिन्होंने रस, अलंकार, छंद तथा नायिका-भेद संबन्धी ग्रन्थो की रचना की है। किसी भी काल की इढ और लंबी-चुस्ती सीमा नही निर्धारित की जा सकती। किसी काल के भीतर कुछ विशेष कारणो से किसी दूसरे ही काल का बीजारोपण हो जाता है, और धीरे-धीरे उस काल के स्थान पर दूसरा काल आ जाता है। दूसरा काल आ जाने पर भी पहले काल का साहित्य-निर्माण सर्वथा बंद न होकर शिथिल रूप मे होता रहता है। विषय की प्रधानता के कारण ही किसी काल को विशेष नाम दिया जाता है। इसी प्रकार भक्तिकाल मे भी रीतिकाल के साहित्य का उदय हुआ और क्रमशः अधिकाश रीतिग्रन्थो के बनने के कारण भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल आ गया।

रसखान के समय के रीति-ग्रन्थकारो मे सर्वश्रेष्ठ केशवदास जी है, जो हिन्दी के प्रथम आचार्य कहे जाते हैं। केशवदास जी रसखान से केवल ३ वर्ष बड़े थे। इनके मुख्य ग्रन्थ 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' है। इनका प्रबन्ध-काव्य 'रामचंद्रिका है, किन्तु इसमे उतनी सफलता नही मिली। यो तो इनके पहले कृपाराम स० १५९८ मे कुछ रस-निरूपण अपनी 'हिततरंगिणी' मे कर चुके थे, तथा बलभद्र मिश्र, गोप कवि, मोहनलाल मिश्र तथा करनेस कवि ने अलंकार तथा शृंगार विषयक ग्रंथ लिखे किन्तु काव्य के सब अंगो का निरूपण ठीक से किसी ने नही किया था, उस काम को आचार्य केशवदास जी ने पूरा किया।

ऊपर यह भली भाँति दिखाया जा चुका है कि रसखान ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि दादूदयाल, प्रेममार्गी सूफी कवि जायसी तथा उसमान, रामभक्ति-शाखा के महान कवि श्रीतुलसीदास जी, कृष्णभक्ति-शाखा के भक्तवर सूरदास जी, नीति-ग्रंथकारो मे प्रधान रहीम कवि तथा रीति-

ग्रन्थकारो के आचार्य महाकवि केशवदास जी के समकालीन थे। रसखान का समय हिन्दी-काव्य का स्वर्णकाल था। उस समय तक हिन्दी-काव्य बहुत समृद्ध हो गया था। काव्य की वैसी उन्नति आज तक नही हुई। जायसी, तुलसीदास और सूरदास के स्थानो की पूर्ति करने वाला आज तक कोई कवि नहीं हुआ, रसखान के लिये यह लाभ की बात थी जो ऐसे समय मे उनका आविर्भाव हुआ। उस समय तक ब्रजभाषा मँज-सँवर कर परिष्कृत तथा शुद्ध हो गई थी। अनूठी भाव-व्यजना का क्षेत्र भी ब्रज-कवियो ने तैयार कर दिया था, छदोविधान सबन्धी शिथिलता भी चली गई थी।

कृष्णभक्ति-शाखा का प्रभाव इन अनेक शाखाओ मे रसखान पर कृष्णभक्ति-शाखा का ही मुख्य प्रभाव पडा। इसका कारण यह है कि कृष्णभक्ति-शाखा मे सौदर्योपासना तथा मधुर भाव की ही प्रधानता थी। रसखान सौंदर्योपासक तथा रसिक थे, यह कहा जा चुका है उनके अनुकूल यही शाखा थी, दूसरा कारण यह है कि इनके इष्टदेव भी तो कृष्ण ही थे। यो तो प्रेममार्गी कवियो का भी कुछ प्रभाव इन पर पडा है। भक्तिकाल के अनन्तर रीतिकाल मे शृंगार की अधिकता का कारण कृष्ण-भक्तो की प्रेम लक्षणा भक्ति भी थी, और यह सूफी प्रेम मे प्रभावित हुई थी, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है? रीतिकाल का भी प्रवेश हो जाने के कारण रसखान के पदो मे यतिभग या न्यूनाधिक मात्रा का दोष नही आने पाया। शृंगार की रुचि का आभास भक्तिकाल के कवियो से ही मिलने लगता है। रसखान मे भी दो-एक स्थलो पर वैसा शृंगार-वर्णन मिलता है जो रीतिकाल मे अति को पहुँच गया था। रसखान का यह सवैया देखिये—

> आज महू दधि बेचन जात ही मोहन रोक लियो मग आयो।
> माँगत दान मे आन लियो, सु कियो निलजी रस जोबन खायो॥

काहू कहूँ सिगरी री बिथा, रसखानि लियो हँसिकै मुसिकायो।
पाले परी मैं अकेली लली, लला लाज लियो, सु कियो मन भायो॥

रसखान का सांसारिक प्रेम ही कृष्णप्रेम मे परिवर्तित होकर प्रगाढ़ हो गया था, यही कारण है कि भक्ति का रंग जम जाने पर भी वह इनका पीछा न छोड़ सका, फिर भी इस प्रकार के छंद बहुत थोड़े है। अधिकतर शुद्ध प्रेम की विह्वलता ही है। रसखान कृष्ण-भक्ति मे केवल प्रभावित ही नही थे वरन् स्वयं भी सच्चे कृष्ण-भक्त थे। कृष्ण के सौंदर्य, वेशभूषा, मुरली तथा लीलाओं पर थे मुग्ध और जी-जान से न्योछावर थे।

३. रचना तथा वर्ण्य विषय

रसखान ने कोई प्रबन्ध-काव्य नही लिखा और न ग्रन्थ लिखने के उद्देश्य से उन्होंने सवैये ही लिखे, हां ५२ दोहों की 'प्रेमबाटिका' को यदि पुस्तक मान लें तो कह सकते है कि उन्होंने एक छोटी सी पुस्तिका लिखी। 'प्रेमबाटिका रचि रुचिर' से विदित होता है कि उन्होंने सोद्देश्य शुद्ध प्रेम का पूर्ण स्वरूप दिखाने के लिये वे दोहे लिखे थे। रसखान परमभक्त थे, कृष्ण-प्रेम की पीर मे विह्वल रहा करते थे, उस अवस्था मे जो भी मधुर भाव उनके हृदय मे आते थे उन्हे वे सवैया या कवित्त मे व्यक्त कर देते थे। यही कारण है कि उनका कोई प्रबन्ध-काव्य नहीं है। वे हृदय के उद्गारो को लय के साथ गाने के लिए सवैया बना लेते थे, इसी मे वे सन्तुष्ट थे और उन्हे शांति मिलती थी। दूसरो के सामने भी वे अपने सवैयो को मस्त होकर गाया करते थे, जिन्हे सुनकर लोग प्रेममग्न हो जाते थे। उन सवैयो को स्वयं गाने के लिए कुछ प्रेमीजन लिख भी लेते थे और जब चाहते थे पढ़कर आनन्द लिया करते थे। उस समय संगीतज्ञों

की, गाने के लिए भक्तों तथा संतों के सुन्दर-सुन्दर पद लिखने की एक विशेष रुचि थी। उसी रुचि के परिणामस्वरूप 'रागरत्नाकर' आदि ग्रन्थ पाये जाते है। इन ग्रथो मे भी रसखान के सवैये मिलते है।

रचना का एकत्र होना जब तक प्रेमी रसखान जीते रहे तब तक उनके मुख से प्रेमलीला के सवैये लोगो को सुनने को मिलते रहे। उनके पीछे भी लोग उनके सवैयो को न भूल सके और एक दूसरे से सुनने लगे। उनके सवैये इतने मधुर होते थे कि उन सवैयो को ही लोग 'रसखान' कहने लगे। यही तक नही, किसी भी मधुर पद को रसखान के नाम से ही सम्बोधित करने लगे। जब किसी को रसखान का सवैया या सरस कविता सुनने की इच्छा होती तो कहता 'भाई दो-चार रसखान सुनाओ।' रसखान के न रहने पर स्वभावतः लोगो की इच्छा हुई कि उनकी रचनाएँ लिख ले जिससे कालातर में विस्मृत न हो जायँ और जब चाहे पढी या सुनाई जा सके। रसखान के कुछ विशेष प्रेमी-भक्तो ने कुछ तो लोगो से पूछ-पूछ कर और कुछ इधर-उधर लिखे पाकर उनके सवैयों को एकत्र करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि उनकी पूर्ण रचना कोई भी एकत्र करने में समर्थ न हो सका, फिर भी बहुत कुछ रचना सगृहीत हो सकी है। रसखान के बाद ही जो सग्रह किया गया होगा उनके नाम का पता तो नहीं चल सकता, किन्तु वर्तमान समय में उनके कवित्त-सवैयो का सग्रह 'सुजान रसखान' के नाम से प्रसिद्ध है। दोहो के सग्रह का नाम 'प्रेमवाटिका' स्वय रसखान ही रख गये थे। 'सुजान रसखान' मे कोई नियम नही है, समय-समय पर उठे हुए भावो के सवैये हैं किन्तु 'प्रेमवाटिका' नियमबद्ध लिखी मालूम होती है।

गोस्वामी किशोरीलाल जी का सग्रह रसखान की बहुत थोडी रचना होते हुए भी जनता मे प्रचलित होने के कारण तथा उच्च कोटि की होने के कारण इसके जो दो-चार सग्रह हुए हैं, उनका उल्लेख करना

अनुपयुक्त न होगा। जहाँ तक पता चलता है सबसे प्रथम गोस्वामी किशोरीलाल जी ने 'खड्गविलास प्रेस' बाँकीपुर से 'रसखान शतक' नाम से रसखान की कुछ रचना प्रकाशित करवाई थी। वह संग्रह इस समय यदि अप्राप्य नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है वह संग्रह अपूर्ण था, स्वयं गोस्वामी जी को उससे सन्तोष न था। उन्हें विश्वास था कि यदि अधिक खोज की जाय तो रसखान की और भी रचना प्राप्त हो सकती है। अपनी इच्छा को गोस्वामी जी बहुत दिनों तक न दबा सके, और अत्यन्त परिश्रम करके रसखान की अधिक रचनाएं खोज निकालीं। 'भारतजीवन प्रेस' से 'सुजान रसखान' नाम का संग्रह प्रकाशित कराया। इस संग्रह में कुल १२७ छन्द हैं, जिनमें १० दोहे सोरठे हैं तथा शेष कवित्त-सवैये हैं। इस संग्रह के कुछ दिनों बाद रसखान की 'प्रेमबाटिका' का संपादन करके पहिले हरिप्रकाश यन्त्रालय' फिर हितचिंतक यन्त्रालय' में प्रकाशित कराई, इसमें कुल ५३ दोहे हैं।

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का संग्रह सं० १९८६ में 'हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग से भावपूर्ण आलोचना तथा भूमिका के साथ एक सटिप्पण संग्रह श्रीप्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ने रसखानपदावली' के नाम से प्रकाशित कराया। इस संग्रह में प्रेमवाटिका' भी सम्मिलित है। गोस्वामी जी के सुजान रसखान' में १२२ कवित्त-सवैये हैं किंतु इस संग्रह में १३४ हैं। ये १२ अधिक कवित्त-सवैये ब्रह्मचारी जी ने रागरत्नाकर' से ढूँढकर निकाले हैं, किंतु इन सवैयों के भाव तथा वर्णन-शैली ऐसी है जो भावुक-भक्त रसखान को श्रृंगारी कवियों के अधिक निकट पहुँचा देती है।

अमीरसिंह जी का संग्रह तीसरा संग्रह 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा ने अमीरसिंह जी द्वारा कराया। इस ग्रन्थ का नाम है 'रसखान और घनानंद', इसमें दोनों कवियों की रचनाएँ संगृहीत हैं। रसखान की 'प्रेम-बाटिका और कवित्त-सवैये प्राय गोस्वामी जी के संग्रह के आधार पर हैं,

कोई विशेष अंतर नहीं है। सुजान रसखान की भांति इसमे भी कवित्त-सवैयो के बीच-बीच मे वे ही १० दोहे-सोरठे आये है, किंतु ब्रह्मचारी जी तथा कवि किङ्कर जी (इनका उल्लेख आगे होगा) ने दोहे सोरठो को 'प्रेमबाटिका' मे ही सम्मिलित कर दिया है।

किंकर जी का संग्रह रसखान की रचना दिन प्रति दिन अधिक पसन्द की जाने लगी और उसकी माँग होने लगी। अभी हाल मे श्रीयुत कवि किंकर जी ने 'अलोक पुस्तकमाला' के प्रथम पुष्प के रूप मे 'रसखान रत्नावली' के नाम से 'भारतवासी प्रेस दारागंज प्रयाग मे एक संग्रह प्रकाशित कराया। इस संग्रह म उन्होंने सबसे पहले कवित्त छाँटकर रख दिये हैं फिर सवैये। 'प्रेमबाटिका' भी इसी संग्रह मे है। 'सुजान रसखान' म जो दोहे-सोरठे कवित्त-सवैया के बीच मे आ गये थे उन्हे भी 'प्रेमबाटिका' मे रख लेने से इनके दोहो की संख्या कुछ अधिक हो गई है। अन्य संग्रहो मे होली का एक पद भी है, किंतु इनके संग्रह मे नही है। एक से अधिक न मिलने के कारण कदाचित् सदेहवश यह पद नही रक्खा। आपने एक काम बडे मजे का किया है। अन्य संग्रहो मे जो सोरठे थे, उन्हे भी पलट कर दोहे बना डाले। सोचा होगा कौन बेमेल करे, सब के सब एकदिल हो गये। आपने उन सवैयो को अपने संग्रह मे स्थान नही दिया जो घोर शृंगारी हैं। गोस्वामी जी को विशेष काट-छाँट नही करनी थी, जो कुछ मिलता गया सब संग्रह मे रखते गये। अमीरसिंह जी ने गोस्वामी जी के संग्रह को ज्यो का त्यों उतार दिया केवल पाद टिप्पणी मे कुछ पाठान्तर दे दिये। श्री ब्रह्मचारी जी साधु तथा कृष्ण-भक्त हैं अत उन सवैयो मे उन्हे कुछ खटकने वाली बात नहीं दिखाई पडी, सभी कुछ भक्ति के प्रवाह म समा गया किंतु साहित्यिक हृदय वाले किंकर जी ऐसा नहीं कर सके, वे इन सवैयो को नही पचा सके। वे सवैये निम्नांकित हैं—

आगन काहे को जाओ पिया, घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊ।
एडी अनार सी मौर रही, बहियां दोऊ चपे सी डार नवाऊ॥
छातिन मे रस के निबुआ, अरु घूघट खोल के दाख चखाऊ॥
टॉगन के रस के चस के रति फूलन की 'रसखान' लुटाऊ॥

अगनि अग मिलाय दोऊ "रसखानि' रहे लपटे तरु छाहीं।
सग निसग अनग को रग सुरग सनी पिय दै गलबाहीं॥
बैन ज्यो मैन सुऐन सनेह को, लूटि रहे रति अन्तर नाहीं।
नीबी गहे कुच कचन कुभ कहे बनिता पिय नाहीं जु नाहीं॥

ये सवैये स्वय कह रहे हैं कि किसी घोर शृगारी कवि के हैं। इनको पढने मे कृष्ण की ओर कुछ भी प्रेम बढता हुआ नहीं दिखाई पडता वरन् किसी ससारी आशिक माशूक की लीलाओ का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है। यदि इन्हे पढने पर भी किसी का मन सासारिक प्रेमी-प्रेमिका की ओर न जाय और राधाकृष्ण की पवित्र प्रेमलीला ही समझे तो उसे ऊचे दर्जे का महात्मा कहना चाहिए, किंतु यह सब के लिए सभव नहीं है अत पाठको के सामने तो इसे नहीं ही रखना चाहिए। केवल रसखान का नाम आ जाने से उनके सवैये मानना ठीक नहीं, क्योकि हिंदी-साहित्य मे यह बात अत्यत साधारण है। किसी प्रसिद्ध कवि के नाम पर अपनी रचनाओं को चलता करने की रुचि हिंदी-कवियो मे प्राय देखी जाती थी, कोई-कोई तो अब भी अपने कवित्तो मे 'कहै पदमाकर' घुसेड देते हैं। दूसरी बात, जिससे इन सवैयो के रसखान का होने मे सदेह है, यह है कि रसखान ने इतना स्पष्ट सभोग-शृगार का वर्णन और कहीं नहीं किया। उनके हृदय मे शुद्ध प्रेम तथा भक्ति की भावना अधिक थी। राधाकृष्ण उनके पूज्य—हृदय मे पूज्य—उपास्यदेव थे, जिनके विषय मे वे इतने खुले शृगार की कल्पना कहीं कर सकते थे। तीसरी बात यह है कि उनका

प्रत्येक वर्णन राधा-कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण से ही संबंधित है। कुछ शृंगार-वर्णन भी किया है तो उनका नाम लेकर, उनका नाम नहीं छूटने पाया। इन दोनों सवैयों में राधाकृष्ण का कहीं पता नहीं है। इनमें 'पिय', 'वनिता' तथा 'रति' आदि ऐसे शब्द हैं जो संदेह उत्पन्न करते हैं। थोड़ी देर के लिये यदि मान लें कि रसखान को ऐसा भाव लिखना अभीष्ट होता तो भी इन शब्दों के स्थान पर वे क्रमशः 'कृष्ण', 'राधा अथवा गोपिका' तथा 'प्रेम' का व्यवहार करते। इन सवैयों में शुद्ध वासनामय सांसारिक शृंगार टपक रहा है, इनमें आध्यात्मिकता की झलक भी नहीं मिलती। अतः जब रसखान के अन्य सवैये ऐसे नहीं हैं तो दो सवैयों को उनके मानकर क्यों उन्हें कलंकित किया जाय।

संपादकों की भूल आश्चर्य है कि सभी संपादकों से एक ही प्रकार की भूल हो गई है। दो सवैयों की पुनरुक्ति तो चारों संपादकों में हुई है और एक सवैया की पुनरुक्ति श्रीब्रह्मचारी जी तथा किंकर जी के संग्रह में अधिक है। यह भूल संभाव्य है, क्योंकि बीस-पचीस सवैया के बाद यदि फिर वही सवैया दो-एक शब्दों के हेर-फेर के साथ आ जाय तो जल्दी उस पर दृष्टि नहीं पड़ती इसका कारण रचना की सरसता ही है। हमें भी दो-एक पाठ में पता नहीं चला वरन आवश्यकतावश जब पचीसों पाठ करने पड़े तब एक-एक करके तीनों सवैया पर दृष्टि पड़ी। संपादकों को दोनों सवैये अवश्य ही लिखे मिले होंगे और उन्होंने बिना ध्यान दिये दोनों को उतार लिया अब यह विचारणीय है कि एक ही सवैया एक ही प्रति में दो जगह कैसे लिखा मिला? किसी ने किसी से कोई सवैया सुना, घर जाकर वह लिखने लगा किंतु ठीक स्मरण न रहने के कारण दो-एक शब्द बदल गये। अब वह अपने परिवर्तित रूप को सुनाने लगा। किसी ने यह परिवर्तित रूप सुना और लिख लिया फिर किसी से शुद्ध रूप सुना। दो एक शब्दों के बदले रहने के कारण इसे दूसरा सवैया समझकर

इसे भी लिख लिया। इस प्रकार किसी एक व्यक्ति की प्रति में एक ही सवैया दो स्थानो पर कुछ दूरी से लिख गया। गोस्वामी जी को कोई ऐसी ही प्रति मिली होगी। उन्होंने संख्या दे-देकर एक के बाद दूसरा छद रख दिया। अन्य सपादको ने भी अपने पूर्व के सग्रह को तो बिना कुछ सोचे-समझे ज्यो का त्यो ले लिया, फिर यदि किसी ने कुछ खोज की तो ऊपर से जोड दिया और किसी को कारणवश कुछ निकालना हुआ तो निकाल दिया। सूरदास जी की रचना मे भी एक ही भाव के दो-दो क्या कई पद है, किंतु उनमे से प्रत्येक की पदावली भिन्न रहती है और एक से दूसरे मे कुछ नवीनता तथा विशेषता अवश्य रहती है। किन्तु सवैयो के इन युग्मो को देखिए, कुछ रेखाकित शब्दो मे परिवर्तन के अतिरिक्त कोई अन्तर नही है।

एक समै इक गोप बधू भई बावरी नेकु न अग सँभारै।
माय सुगाय कै टोना सा ढूढति सासु सयानी सयानी पुकारै॥
यो 'रसखानि' रहे सिगरो ब्रज आन को आन उपाय बिचारै।
कोऊ न मोहन के कर तें यह बैरिनि बाँसुरिया गहि डारै॥

आज भटू इक गोप बधू भई भावरी नेकु न अग सँभारै।
मात अथात न देवनि पूजत सासु सयानी सयानी पुकारै॥
यो 'रसखानि' घिर्‌यो सिगरो ब्रज कौन को कौन उपाय बिचारै।
कोउ न कान्हर के कर तें यह बैरिनि बाँसुरिया गहि जारै॥

× × ×

जा दिन ते वह नद को छोहरो या बन धेनु चराइ गयो है।
मीठिहीताननि गोधन गावत बेनु बजाइ रिझाइ गयो है॥

वा दिन सों कछु टोना सो कै 'रसखानि' हिये मे समाइ गया है।
कोऊ न काहु की कानि करै सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है॥
ए सजनी वह नद को सावरो या बन धेनु चराइ गयो है।
मोहिनि तानिनि गोधन गावत बेनु बजाइ रिझाइ गयो है॥
ताही घरी कछु टोना सो कै 'रसखानि' हिये मे समाइ गयो है।
कोऊ न काहू की बात सुनै सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है॥

तीसरे युग्म मे, जो केवल ब्रह्मचारी जी तथा किक— जी के सग्रह मे , तो कुछ भी अतर नही है केवल झलकावै और झलकैयत, तुलावै और लैयत तथा लजावै और ललचैयत अतर है, यथा—

कचन मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाय सदा झलकावै।
प्रातहि ते सगरी नगरी गजमोतिन ही की तुलानि तुलावै॥
पालै प्रजानि प्रजापति सो बन सपति सो मघवाहि लजावै।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि' जु साँवरे ग्वाल सो नेह न लावै॥

कचन मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाय सदा झलकैयत।
प्रातहि ते सगरी नगरी गजमोतिन ही को तुलानि तुलैयत॥
जद्यपि दीन प्रजानि प्रजा तिनकी प्रभुता मघवा ललचैयत।
ऐसो भयो तो कहा रसखानि जु साँवरे ग्वाल सो नेह न लैयत॥

'सुजान रसखान' और 'प्रेमबाटिका' का क्रमश रसखान की इन दो रचनाओ मे कौन पहले की है और कौन पीछे की, इसका निर्णय भी अनुमान ही के सहारे करना पडेगा। 'विधु सागर रस इदु शुभ' वाले दोहे के अनुसार यदि सागर का साकेतिक अर्थ ७ लेते है तब 'प्रेमबाटिका' स० १६७१ मे समाप्त हुई प्रमाणित होती है, और तब मानना पडेगा कि

• •

'प्रेमवाटिका' पीछे की रचना है। किंतु सागर का अर्थ ७ केवल हिंदी वाले ही लेते हैं, संस्कृत में सागर का सांकेतिक अर्थ ४ होता है। अब यदि संस्कृत के अनुसार अर्थ करें तो 'प्रेमवाटिका' का समाप्ति-काल सं० १६४१ ठहरता है, जिससे कहना पड़ेगा कि यह पूर्व की रचना है। अन्य विद्वानों ने सागर का अर्थ ७ ही लेकर इसे अंतिम रचना माना है, किंतु अपनी समझ से तो यह पूर्व की रचना विदित होती है। दीक्षा लेने के बाद भी कुछ दिनों तक उनके पूर्वप्रेम का रंग उन पर चढ़ा रहा और प्रेम के महत्त्व को बढ़ाने के लिए वे 'प्रेमवाटिका' की रचना करने रहे। संभवतः वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि जो प्रेम वे कर रहे थे, बुरा नहीं था, शुद्ध और सच्चा प्रेम चाहे जिसके प्रति हो महान् ही होता है। एक दोहे में उन्होंने लैला के प्रेम की प्रशंसा की है यथा—

> **अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।**
> **दो तनहू जहँ एक भे, मन मिलाइ महबूब॥**

फिर भी जब तक कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाता तब तक निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रसखान ने कुछ इतनी ही, ऐसी बात नहीं है। अभी तक परिश्रमपूर्ण खोज नहीं हुई। उनकी वे रचनाएँ, जो किसी ने लिखी न होंगी, अब मिल सकती, किंतु ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनकी और भी रचना मिल सकती है। एक यह भी उपाय है कि घूम-घूमकर उन लोगों से रसखान के सवैये सुने जाँय जिन्हें स्मरण हो और फिर संगृहीत छंदों से मिलाये जाएँ। यदि कोई ऐसा छंद मिले जो संग्रह में न आ सका हो तो उस पर विचार किया जाय और उचित समझा जाय तो उसे रसखान का छंद मान लिया जाय। रसखान की और भी रचनायें होंगी इस विश्वास का कारण यह है कि वे उन भक्तों में से थे जो सच्चे अर्थ

मे ससार मे विरक्त हुए थे और भगवान का गुणानुवाद करना हा जिनका एक मात्र कार्य था ।

'सुजान रसखान' का वर्ण्य विषय रसखान भक्त और विद्वान दोनो थे । भागवत का फारसी अनुवाद उन्होंने बडे चाव से पढा था । दीक्षोपरात सत विद्वानो के सपर्क तथा स्वाध्याय मे सस्कृत का भी कुछ ज्ञान हो गया था । श्रीकृष्ण की लीलाओ मे वे भली भाँति परिचित थे । कृष्ण की अन्य लीलाओ की अपेक्षा रसखान को कृष्ण का वशी बजाकर ब्रज बालाओ को मोहित करने वाला प्रसग अत्यत प्रिय था । शिशु-लीला या ब्रज के बाद की लीलाए उन्हे उतना आकर्षित नही कर सकी । इसी कारण 'सुजान रसखान' के प्राय सभी छद मन-मोहन मुरली रग तथा गोपिकाओ के प्रसग के है । यद्यपि रसखान सूरदास की भाँति सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावो तक नही पहुँच सके, फिर भी इनके सवैयो मे एक ऐसा अनोखापन तथा मधुरिमा है जो रसोद्रेक के लिये पर्याप्त है । इनके कुछ सवैये तो ऐसे मधुर है जो अपनी समता नही रखते ।

इस प्रकार रसखान के मुख्य वर्ण्य हुए कृष्ण, गोपिकाए तथा मुरली । कृष्ण की छवि का इन्होंने बडा उत्कृष्ट वर्णन किया है । मोर-मुकुट, पीताबर, कछनी, वनमाला इत्यादि की सहायता से कृष्ण को शोभासागर बना दिया है । उस लावण्यमय रूप का प्रभाव गोपिकाओ पर कैसा पडा यह बडी कुशलता पूर्वक चित्रित किया गया है । कृष्ण की मद मुसकान देखकर ही न जाने कितनी ब्रज-बालाए अपना काम छोडकर बेसुध हो जाती है । गोपियो के साथ कृष्ण की छेडछाड भी अत्यत भावपूर्ण है । कही कृष्ण-गोपियो का लोक-लाज त्याग कर मिलन हो रहा है किसी नवागता वधू को सचेत किया जा रहा है कि कृष्ण के सम्मुख न पडना नही तो उनकी मुसकान देखकर तू अपने आपे मे न रहेगी । होली खेलने का वर्णन भी सुन्दर है ।

रसखान ने मुरली का प्रभाव बड़ी लगन और रुचि के साथ कहा है। वंशी बजते ही सब उसी ओर भागती है, मानाएं तथा मानें पुकारती ही रह जाती है पर उनकी कौन सुनता है। मुरली है तो मधुर, पर उसकी ध्वनि सुनकर गोपियाँ व्याकुल हो जाती है जब मुरली बजाने को वे विष फैलाना कहती है। किन्हीं-किन्हीं को तो मुरली से ईर्ष्या भी होने लगी, वे चाहती है कि कोई कृष्ण के हाथ से इसे छीनकर फक देता या जला देता तो अच्छा करता।

रसखान का स्वाभिलाष-वर्णन बड़ा ही मार्मिक तथा भक्तों के उपयुक्त ही हुआ है। व चाहते है कि चाहे मनुष्य, पशु पक्षी पत्थर या वृक्ष किसी भी रूप मे रह किंतु कृष्ण का साहचर्य निरंतर प्राप्त होता रहे। कृष्ण पर अथवा कृष्ण से संपर्क रखने वाली वस्तुओं पर उन्होंने तीनों लोकों का राज्य न्योछावर कर रक्खा था। कृष्ण-प्रेम को ही सार बतलाते हुए कहते है कि यदि लीला पुरुषोत्तम भगवान कृष्ण के चरणों मे प्रेम नहीं है तो ससार के सारे वैभव व्यर्थ हैं।

रसखान ने अधिकतर सयोग-शृगार ही लिखा है। यद्यपि ब्रज-बालाओं के विरह की आकुलता का वर्णन भी है तथापि वह मथुरा चले जाने पर होने वाला प्रवास विरह नहीं है। वरन् गोकुल म ही रहकर होने वाला मान विरह है। केवल ५-६ सवैये ऐसे है जो कृष्ण के मथुरा मे रहने के समय के है। एक मे कुबरी को दंड देने की लालसा है, एक मे चेरी बनने की अभिलाषा, क्योंकि कृष्ण चेरी पर रीझे थे। केवल एक सवैये मे बाललीला का वर्णन है, वह है कौए का कृष्ण के हाथ मे रोटी छीन ले जाना। इसी प्रकार एक सवैये मे कृष्ण के कंस का हाथी पछाड़ने का वर्णन है। शेष सभी रचनाए गोपी-कृष्ण की प्रेममय लीला से सबधित है। करील के कुजो पर ऊँचे-ऊँचे स्वर्ण मन्दिरो को न्योछावर करने वाले प्रेमी रसखान अपने ढग के निराले कवि हैं। तुलसीदास जी की भाँति

इन्होंने भी मानव-काव्य की रचना नही की। इनके काव्य-जगत मे केवल चार की सत्ता थी और वे हैं कृष्ण, बासुरी, गोपिकाए और भक्त या दशक (स्वय रसखान)।

वशी बजाने के साथ-साथ कृष्ण के गोधन गाने का भी वर्णन कई छदो मे है। गोधन गान-विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है, किंतु नाम बदल जाने के कारण पता नही चलता कि अब किस गान को गोधन कहे। कदाचित् बिरहा की कोटि का कोई गान रहा होगा, अथवा बहुत सभव है कि बिरहा ही गोधन का स्थापन्न हो, क्योकि ग्वालो का मुख्य गान अब भी बिरहा ही है जिसे गाय चराते समय या यो ही वे तन्मय होकर गाते है। रसखान के छदो मे भी इसी प्रकार का वर्णन है जैसे 'गोधन गावत धेनु चरावत'।

'प्रेमबाटिका' का वर्ण्य विषय इन थोडे से दोहो मे रसखान ने प्रेम का विशद और व्यापक वर्णन किया है। ये दोहे इतिवृत्तात्मक नही हैं। इनके द्वारा प्रेम का रूप स्पष्ट किया गया है। प्रेम की परिभाषा प्रेम की पहिचान, प्रेम का प्रभाव प्रेम-प्राप्ति के साधन तथा प्रेम की सर्वोच्चता इन दोहो मे दिखाई है। रसखान ने जिस प्रेम का प्रतिपादन किया है वह ससार के साधारण प्रेम से भिन्न आध्यात्मिक प्रेम है। जो 'प्रेमबाटिका' को इस आशा से खोलेगे कि उसमे नायक-नायिका की प्रेमभरी बाते तथा चुहलबाजी पढने को मिलेगी, उन्हे निराश होना पडेगा। कवि ने ५३ दोहो मे प्रेम की प्रधानता सिद्ध की है यहाँ तक कि हरि से भी बडा हरि प्रेम को माना है। 'प्रेमबाटिका' ससार के समस्त प्रेम-साहित्य की एक अमूल्य वस्तु है। यदि विश्व भर का न कहे तो कम से कम भारतीय प्रेम का आदर्श तो यही है। रसखान का प्रेम-निरूपण एक अलग अध्याय मे कहेगे।

४ रसखान की काव्य-शैली

तत्कालीन प्रचलित छद जिस समय तक साहित्यिक भाषा सस्कृत थी, उस समय तक सस्कृत छदो का प्रयोग होता रहा। साहित्य-सिंहासन

से किसी भाषा के च्युत होने तथा दूसरी भाषा के सुशोभित होने में कुछ समय लगता है। यह कार्य अचानक नहीं, क्रमश होता है। अत एक अवस्था ऐसी भी आती है जब कि दोनों भाषाएं कुछ न्यूनाधिक प्रयोग के साथ चलती रहती है। इसी अवस्था में क्रमश एक का पतन तथा दूसरे का उत्थान और विकास होता चलता है। जब सस्कृत भाषा साहित्य के सिंहासन से च्युत हो रही थी, जयदेव ने देखा कि संस्कृत छदों की अपेक्षा जनता गीत या पद अधिक पसद करती है, अत उन्होंने संस्कृत वृत्तों में हाथ खींचकर गीत-रचना में अपना कौशल दिखाया। उनका अनुमान ठीक था, क्योंकि उनकी रचना 'गीत-गोविंद' अत्यन्त लोकप्रिय हुई। जयदेव ने कोमल-कात पदावली द्वारा इन गीतों को इतना मधुर तथा रसमय बना दिया कि गीत-छन्द श्रोता तथा अन्य कवियों के मन में बैठ गया। जयदेव के अनतर कवियों ने गीत ही रचने आरम्भ किये और जनता भी गीत सुनकर अधिक प्रसन्न तथा सन्तुष्ट होने लगी। उस समय से गीतों की परपरा चल निकली। कबीरदास की अधिक रचना पदों में ही है। भक्त सूरदास का विशाल काव्य ग्रथ 'सूर-सागर' गीतों में ही रचा गया है। अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी पदों की ही रचना की है। महात्मा तुलसीदास जी ने भी 'गीतावली' नाम का ग्रथ लिखा है जो उच्च कोटि का है। मीरा के गीत प्रसिद्ध ही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय गीत-रचना ही प्रधान थी। यद्यपि अन्य छदों में भी थोड़ी बहुत रचना होती थी तथापि गीतों की अपेक्षा बहुत कम।

रसखान की छद-पद्धति रसखान ने देखा कि रचना-शैली काव्य-पद्धति से पृथक् हुई जा रही है, गीतों की अपेक्षा अन्य छदों का प्रयोग कवि बहुत कम करते है गीतों के भार से अन्य काव्य-छद दबे-से जा रहे है, अत रचना-शैली को काव्य-पद्धति के समीप तथा अनन्त लाने के लिये उन्होंने गीतों से हाथ खींचकर कवित्त-सवैयों में रचना की। गीत

छन्द-शास्त्र के नियमों में बद्ध नहीं हैं, वे स्वतन्त्र हैं। किसी एक तथ्य को एक छोटी सी पंक्ति में और फिर ऊपर-नीचे चाहे जितनी पंक्तियाँ रख दीजिए। हाँ, तुकान्त तथा समान मात्राओं का होना आवश्यक है, यद्यपि अब गीतों की पंक्तियों में सिकुड़ने तथा बढ़ने की शक्ति आ गई है। कवित्त-सवैये छन्द-शास्त्र के नियमों में पूर्णतया आबद्ध हैं, इनमें गण और लघु-गुरु के कारण कई भेद भी हो गये हैं। रसखान ने मनहरण कवित्त लिखे हैं जिनके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं तथा १६, १५ पर यति होती है। सवैयों में रसखान ने मत्तगयंद सवैया चुना है, जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण (ऽ।।) और दो गुरु कुल २३ वर्ण होते हैं। किसी-किसी में ये मत्तगयंद के नियम का पूर्ण पालन नहीं कर सके हैं, जैसे

लोग कहैं ब्रज के 'रसखानि' अनंदित नंद जसोमति जू पर।

इसमें ७ भगण और २ गुरु के स्थान पर पूरे ८ भगण अर्थात् २४ वर्ण हो गये हैं, किंतु ऐसे छन्द बहुत थोड़े हैं जिनमें नियमों का पालन न हुआ हो।

कवित्त-सवैयों की पद्धति रसखान की नवीन पद्धति नहीं है वरन् परंपरागत है। बहुत प्राचीन काल से भाटों और चारणों के बीच इसकी धारा बहती चली आ रही थी, किंतु क्रमशः इसका प्रवाह शिथिल होता गया। वीरगाथा-काल में कवियों ने छप्पय, रोला आदि छन्दों को अधिक प्रश्रय दिया, क्योंकि वीर भाव के लिये वे ही अधिक उपयुक्त समझे गये। भक्तिकाल के ज्ञानाश्रयी शाखा के संत अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, वे छन्द-शास्त्र से परिचित न थे, अतः टेढ़े-मेढ़े गीतों में ही अपना संदेश जनता तक पहुँचाया, हाँ सरल और छोटा समझकर दोहा छन्द को भी अपना लिया था। प्रेम-मार्गी कवियों को सूफी मतानुसार प्रतिपादित केवल प्रेम की पीर की व्यंजना करनी थी, उन्हें छन्द-शास्त्र के बखेड़ों से कोई विशेष मतलब न था, अतः उन्होंने भी अत्यन्त सरल और छोटे छन्द दोहे चौपाइयों को

चुना। रामभक्ति तथा कृष्णभक्ति-शाखा में कुछ कवि हुए जिन्होंने कवित्त-सवैयों में रचना की। गोस्वामी तुलसीदास जी की 'कवितावली' प्रसिद्ध है। केशवदास ने भी 'रामचन्द्रिका' में कवित्त-सवैयों का अधिक प्रयोग किया है। प० नरोत्तमदास जी ने 'सुदामाचरित्र' सवैया और दोहा में ही लिखा है। इनके अतिरिक्त निपट निरंजन, हरिवंश अली, राजा बीरबल, गंग तथा बलभद्र मिश्र आदि कवि हुए हैं, जिन्होंने कवित्त-सवैयों में रचना की है। इतने कवियों के होते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि इन कवियों के कुल कवित्त-सवैया से कहीं अधिक पदों की रचना हुई। रीतिकाल में पहुँचकर कवित्त-सवैयों की रचना अधिक मात्रा में हुई।

दोहा अत्यंत प्राचीन और मंजा हुआ छंद है। इसकी धारा अविच्छिन्न रूप में बहती आ रही है और कदाचित् बहती जायगी। इस दोहा छंद में भी रसखान ने रचना की है और अच्छी कुशलता दिखाई है। 'प्रेमवाटिका' में केवल दोहे हैं जो शुद्ध तथा नियमानुकूल हैं। इनका एक गीत भी पाया जाता है, जो होली प्रसंग का है। पता नहीं इन्होंने और भी गीत लिखे हैं या नहीं, किंतु अभी तक तो एक ही मिला है।

स्वभावोक्ति तथा वक्रोक्ति किसी बात को कहने के प्रायः दो ढंग होते हैं एक ढंग तो वह है, जिसके अनुसार ज्यों की त्यों सीधी सीधी बात बिना शाब्दिक आडंबर के कह दी जाती है इसे स्वभावोक्ति कहते हैं। मनुष्य स्वभावतः जिस प्रकार बातचीत करता है इसी प्रकार कवि अपनी शैली को भी बनाने का प्रयत्न करता है, वह कहने वाली बात में किसी प्रकार की शाब्दिक कलई नहीं चढ़ाता। दूसरा ढंग वह है जिसमें बात सीधे न कहकर घुमा फिराकर कही जाती है, कवि का संदेश शाब्दिक आवरण में ढका रहता है, इसे वक्रोक्ति या वचन-भंगिमा कहते हैं। जैसे यदि यह कहना हो कि "विरह-दुःख के कारण नित्य आँखों से आँसू बहा करते हैं" तो वक्रोक्ति की ओर रुचि रखने वाला कवि कहेगा "पावस अखियन

माहि बस्यो है'' । कुछ आचार्यो का मत था कि काव्य मे वक्रोक्ति ही मूल तत्त्व है, उसके बिना काव्य कैसा ? सीधी-सीधी बात कह देना कविता करना नही है । किन्तु विचारपूर्वक देखा गया तो पता चला कि सीधे ढग से बात कहने मे भी रस की निष्पत्ति होती है, और जिसमे रस की निष्पत्ति होती हो उसे तो कविता मानना ही पडेगा । इसी कारण से स्वाभाविक ढग से कहे हुए रसमय कथन को कुछ लोग स्वभावोक्ति अलकार के नाम से पुकारने लगे । यदि अधिक दूर तक दृष्टि डाली जाय तो ये दोनो बाते युक्तिसगत प्रतीत न होगी । न तो यह ठीक है कि काव्य मे वचन-भगिमा ही सब कुछ है और न स्वाभाविक कथन को स्वभावोक्ति अलकार कहना ही ठीक है । किसी चमत्कारपूर्ण कथन-शैली को ही अलकार कहते है और यह प्रत्यक्ष है कि सीधी-सीधी कही हुई बात मे कोई चमत्कार नही है तब उसे अलकार की सज्ञा दे ही कैसे सकते है ? दूसरी बात यह है कि स्वाभाविक ढग से कही हुई बात मे भी कथित विषय, भाव तथा कोमल पदावली के कारण जो उससे रस की निष्पत्ति होती है इस कारण उसे कविता के अतर्गत लेने मे कुछ हिचक भी नही हो सकती । तात्पर्य यह है कि स्वभावोक्ति-रचना पद्धति अन्य पद्धतियो की भाँति एक रचना पद्धति है जो काव्य-शास्त्रानुकूल है । अब यह देखना है कि रसखान ने अपने विभाव-वर्णन मे किस पद्धति को ग्रहण किया है ।

रसखान की रचना-पद्धति रसखान ने स्वभावोक्ति को ही अपनी रचना के लिए उपयुक्त समझा और उसी का सहारा लिया । उन्हें जो कुछ भी कहना था उसे सीधे ढग से बिना कुछ घुमाव-फिराव के कहा । उन्होंने अपनी शक्ति कथन-प्रणाली की विशेषता मे न लगाकर विधायक कल्पना के निर्माण मे लगाई रसखान ने यह प्रयत्न नही किया कि जो कुछ कहना है उसे विशिष्ट शैली मे कहे, वरन उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि जो कुछ कहना है वह स्वय सुदर तथा मधुर हो । उनका ध्यान

कथन प्रणाली को सुन्दर बनाने की ओर न हो कर कथ्य को ही सुन्दर बनाने की ओर रहा है। यही कारण है कि उनके कहने की शैली मे विशिष्टता न होते हुए भी उनकी रचना अत्यत रसपूर्ण है। चमत्कारिक कथन-शैली से युक्त किसी रचना मे उनकी विशिष्ट प्रणाली से हीन रचना किसी प्रकार भी कम नही है, प्रत्युत उस प्रकार की अनेक रचनाओ मे श्रेष्ठ है। देखिए, उनके कहने का ढग कितना सीधा है, फिर भी कविता कितनी सरस है—

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं गुज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढि पितबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि सग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
पै मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

निम्नाकित दोहे को देखिए कितने बडे तथ्य की बात सीधे ढग मे कह दी है, जिसमे कथन की विशिष्ट प्रणाली शायद धक्के खाती फिरेगी—

ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती मत, विश्वास, विवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक॥

इस प्रकार हम देखते है कि रसखान के कहने का ढग बहुत सीधा है, किंतु जो वे कहते है, वह स्वय इतना रसपूर्ण तथा प्रभावशाली होता है कि सब का मन आकर्षित कर लेता है। सुनने वाला को यह आभास नही मिलने पाता कि इसकी कथन शैली मे कोई विशिष्टता नही है अथवा कोई चमत्कार नही है, उन्हे किसी भी प्रकार की कमी नही मालूम पडती। रसखान कृष्ण-प्रेम मे मग्न थे, वे कविता-वधू के प्रेमी नही थे, इसीलिए उन्होंने काव्य-सबधी विषयो पर विशेष ध्यान नही दिया, वरन् हृदय को घायल कर देने वाली, कृष्ण प्रेम की पीर उत्पन्न कर देने वाली कृष्ण-

लीलाओं की कल्पना की ओर ही विशेष ध्यान दिया है और अपने कार्य में पूर्ण रूप में सफल हुए हैं। चमत्कार रहित होने के कारण उनकी रचना ठुकरा नहीं दी गई, वरन् इसी गुण के कारण उनकी रचनाओं का अधिकाधिक आदर हुआ और होता जा रहा है।

स्वभावोक्ति की उपादेयता अपने अपने स्थान पर सभी वस्तुएं अच्छी लगती हैं। केवल अच्छे लगने तक बात नहीं है, प्रत्युत अपने स्थान पर वही और केवल वही वस्तु अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। तुलसीदास जी ने भी कहा है—

सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीच।

स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति के अपने भिन्न-भिन्न क्षेत्र हैं। एक ऐसा भी क्षेत्र है जिसमें स्वभावोक्ति ही अधिक उपयुक्त विदित होती है, वक्रोक्ति नहीं। वह साधारण जन समुदाय का क्षेत्र है। यदि हम सामान्य जनता से कुछ कहना है, यदि हम चाहते हैं कि हमारी बात प्राय सर्व समझ सकें तो हमें चाहिए कि सीधे ढंग से अपनी बात कहें। वक्रोक्ति का आदर कवि-कोविदों तथा साहित्यिकों के बीच अवश्य हो सकता है किंतु सामान्य जनता के बीच उसका आदर होना कठिन है। यही कारण है कि रसखान ने सरल कथन प्रणाली को चुना, क्योंकि वे साहित्य-क्षेत्र में स्थान पाने के लिये या कवीश्वर कहलाने के लिए कवित्त नहीं कर रहे थे। वे अपनी मधुर अनुभूतियों में जनता को भी सम्मिलित करना चाहते थे। रसखान ने स्वभावोक्ति को सकारण ग्रहण किया था।

रसखान के कुछ वक्रोक्तिस्थल रसखान की प्रधान वर्णन-शैली स्वभावोक्ति ही रही है, किन्तु कहीं-कहीं वक्रोक्ति का रूप भी आ गया है। ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं। व्रज पर कृष्ण का प्रभाव वर्णन करने के लिये कहते हैं—

कोऊ न काहू की कानि करै सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है।

यहाँ पर यह न कहकर कि श्रीकृष्ण ने सब को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, कहते हैं कि सारा ब्रज उनके हाथों बिक गया है, कोई किसी की लज्जा नहीं करता, किसी को किसी का सकोच नहीं रह गया, सब कृष्ण की ओर खिंचे जा रहे हैं। इसी प्रकार और भी कुछ स्थल हैं, जिनमें वक्रोक्ति की छटा दिखलाई पड़ रही है—

ताहि सरौ लखि लाख जरौ इहि पञ्च पतिब्रत ताख धरो ज।

*

पै न दिखाई परै अब बावरो दै के बियोग-बिथा की मँजूरी।

*

कारे बिसारे को चाहै उतार्यो अरे बिष बावरे राख लगाइ कै।

*

जैहै अभूषन काहू सखी को तो मोल छला के लला न बिकैहौ।

इन वक्रोक्तियों में भी रसखान की स्वाभाविक सरसता छूटने नहीं पाई, अत ये छद भी बड़े सुन्दर हो गये हैं, किंतु इस प्रकार के कथन की ओर इनकी विशेष रुचि नहीं थी।

५. रसखान का कवित्व

भाव-व्यंजना. पाठक या श्रोता के हृदय में रस का सचार करना ही काव्य का लक्ष्य है। जिस काव्य के पढ़ने या सुनने से हृदय में रस की उत्पत्ति न हो वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं। हृदय में रसोद्रेक करना ही कवि-कर्म का मुख्य उद्देश्य है। कवि भाव-व्यजना के द्वारा रस की सृष्टि करता है। इस भाव-व्यजना के लिये साधन की आवश्यकता होती है, और वह साधन है बिंब या रूप। इसी बिंब या रूप के आधार

पर कवि भाव-व्यंजना करता है और पाठक अथवा श्रोता के हृदय में रस उत्पन्न करने में सफल होता है। भाव-व्यंजना एक ही प्रकार की नहीं होती, भिन्न-भिन्न प्रकार से भाव-व्यंजना हो सकती है जैसे उक्तिमुखेन भाव-व्यंजना, उद्दीपनमुखेन भाव-व्यंजना तथा सचारीमुखेन भाव-व्यंजना आदि। एक ही कवि विविध प्रकार की भाव-व्यंजनाओं का सहारा ले सकता है अथवा एक ही प्रकार की भाव-व्यंजना कर सकता है।

रसखान में भाव-व्यंजना की विविधता नहीं दिखाई पड़ती। उनकी भाव-व्यंजना उक्तिमुखेन-प्रधान है। भिन्न-भिन्न चेष्टाओं अथवा अनुवृत्तियों का वर्णन इन्होंने नहीं किया। भाव व्यंजना का बहुत सीमित मार्ग ग्रहण किया है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ इनके वर्णन में नहीं आतीं, फिर कारण क्या है कि इनके काव्य में सरसता कूट-कूटकर भर गई है? प्राचीन काल से चला आता हुआ विषय इनके काव्य में आकर पिष्टपेषित क्यों नहीं प्रतीत होता? इसका कारण यह है कि रसखान का विधान बहुत चमत्कारपूर्ण हुआ है। उक्तियों के विधान में ही कवि की शक्ति दिखाई पड़ती है। जिसकी उक्तियाँ जितनी ही आकर्षक तथा प्रभावशाली होंगी उतना ही सशक्त कवि समझा जायगा। बात यह है कि चेष्टाओं के विधान में प्रसार के लिये उतना स्थान नहीं रहता। कवि चेष्टाओं की कल्पना सीमा के बाहर नहीं कर सकता, वे परिमित होती हैं, किन्तु उक्तियों की कोई सीमा नहीं है। एक ही भाव के लिये अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार कवि असख्य उक्तियों की कल्पना कर सकते हैं। दूसरी बात यह है कि चेष्टाओं के प्रायः सभी स्वरूप साहित्य-ग्रन्थों में पाये जाते हैं, अतः उन्हीं का वर्णन करने से कवि की प्रतिभा के लिये उसमें स्थान नहीं रह जाता। रसखान ने जो थोड़ी-बहुत चेष्टाओं का वर्णन किया है वे उनकी स्वतः कल्पित या निरीक्षित हैं, इसीलिये उनमें मौलिकता और सौंदर्य आ गया है। परम्परागत चेष्टाएँ भी हैं किन्तु कम हैं। इनका निरीक्षण (Observation)

त सूक्ष्म है। कृष्ण की मुसकान देखकर एक मूर्छित गोपी का सपरिवार
ा स्वाभाविक चित्र खींचा है—

अबहीं गई खिरक गाइ कैं दुहाइबे को,
बावरी ह्वै आई डारि दोहिनी यो पानि की।
कोऊ कहै छरी, कोऊ मौन परी डरी, कोऊ—
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की॥

सास ब्रत ठानै नंद बोलत सयाने धाइ,
दौरि दौरि आन, मानो खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसैं मुरझानि पहिचानि कहूँ
देखी मुसकानि वा अहीर 'रसखानि' की॥

इनकी अपनी उक्ति पर हृदय लिए बिना कुछ नहीं रहता। चेष्टाओं का वर्णन करते-करते अन्त में एक ऐसी युक्ति कह देते हैं जो सीधे हृदय जा टिकती है।

बंसी बजावत आनि कढ़ो सो गली में अली कछु टोना सो डारै।
हेरि चितै तिरछी करि दीठि चलो गयो मोहन मूठि-सी मारै॥
नाही घरी सों परी धनि सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहु वारै।
राधिका जीहै तो जीहै सबै न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारै॥

इस अंतिम चरण में कितनी स्नेहपूर्ण धमकी भरी है! गोपियों की मर्थता भी लक्षित हो रही है। उनका तात्पर्य है कि कृष्ण का तो हम बिगाड़ नहीं सकतीं, हाँ अपने प्राण भले ही दे सकती हैं सो नंद द्वार पर हलाहल पीकर प्राण त्याग देंगी। इसी प्रकार की उक्तियों की कल्पना करके रसखान ने अपने प्रत्येक पद में रस भर दिया है।

गोपियों को कृष्ण के रोककर खड़े हो जाने पर रसखान ने गोपियों की प्रेमपूर्ण फटकार से भरी कैसी अनोखी उक्ति की कल्पना की है—

दानी भये नये मागन दान सुनैं जु पै कंस तौ बाँधि कै जैहौ।
रोकत हौ बन मैं 'रसखानि' पसारत हाथ घनौ दुख पैहौ॥
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहौ।
जैहै अभूषन काहू सखी को तो मोल छला के लला न बिकैहौ॥

कहाँ तक कहा जाय इस प्रकार की सरस उक्तियाँ उनके काव्य में भरी पड़ी हैं। केशवदास ऐसे महाकवि अलंकारों के बल पर चमत्कार तो खूब पैदा कर सके किंतु रसखान जैसा निरीक्षण उन्हें नहीं मिला था, जिससे उनके काव्य में वह सरसता तथा आकर्षण शक्ति नहीं आ सकी जो रसखान के सवैयों में आ गई है।

अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी कवियों का एक प्रकार का वर्गीकरण अंतर्मुखी और बहिर्मुखी नाम से भी किया जाता है। आंतरिक भावों की व्यंजना करने वाले तथा उन भावों द्वारा हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करने वाले अंतर्मुखी कवि कहलाते हैं। ऐसे कवि अंतस्तल के भावों की छानबीन में ही अधिक रहते हैं। बहिर्मुखी कवि किसी रूप या घटना का प्रभाव बाह्य स्थिति पर क्या पड़ा, यह दिखलाते हैं। वे बाह्य चेष्टाओं के वर्णन तथा कथन द्वारा ही काव्य में सरसता ले आते हैं। रसखान इसी दूसरी कोटि के कवि थे। वे अंतर्वृत्तियों की छानबीन तथा उनके चित्रण में नहीं लगे। इन्होंने प्रत्यक्ष दर्शित होने वाले बाह्य रूपों के चित्रण में ही अपनी कुशलता दिखाई है। अंतर्वृत्तियों को टटोलने वाले तथा उनकी गहराई तक पहुँचने वाले सूरदास तथा घनानंद आदि थे। इन दो शैलियों में कौन श्रेष्ठ है, यह नहीं कहा जा सकता। दोनों में समान शक्ति है। क्षमताशील कवि चाहे किसी भी—अंतर्मुखी अथवा

बहिर्मुखी—शैली को ग्रहण कर सुन्दर रसमय काव्य की सृष्टि कर सकता है। सूरदास, घनानन्द को जो सफलता अन्तर्मुखी काव्य में मिली है, वही सफलता रसखान को बहिर्मुखी काव्य से मिली है। रसखान ने कृष्ण के हृदयगत गुणों का वर्णन अधिक नहीं किया, प्रत्युत उनकी रूप-छटा का ही अधिक चित्रण किया है। रसखान की गोपियां कृष्ण की हृदयगत विशेषताओं या गुणों पर नहीं रीझी थीं। वे बाह्य उपकरण अर्थात् कृष्ण की तिरछी चितवन, बांकी अदा तथा मुरली की मधुर ध्वनि पर न्यौछावर थीं। रसखान ने कृष्ण का हृदय-मार्दव व्यक्त करने का उतना प्रयत्न नहीं किया जितना प्रयत्न उनके रूप-सौंदर्य को स्पष्ट करने का किया है। रसखान के किसी भी छन्द को ले लीजिए, उसमें मनोभावों की अपेक्षा बाह्य चेष्टाएं ही अधिक दिखाई देंगी। उदाहरण के लिए दो-एक सवैये देखिए—

लोक की लाज तजी तबहीं जब देख्यो सखी ब्रजचंद सलोनो।
खंजन मीन सरोजन की छबि गंजन नैन लला दिन होनो॥
'रसखानि' निहारि सकै जु सम्हारि कै को तिय है, वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सो जोहन को सर, बेधत प्रानन नंद को छोनो॥

निम्नांकित सवैये में कृष्ण की वक्र विलोकन, वर मुस्कान, अमीनिधि बैन तथा बाँसुरी की टेर के द्वारा गोपियों को अपनाने का कैसा सुन्दर चित्रण है। इसमें कृष्ण के सभी बाह्य कार्य व्यापार हैं—

बाँकी बिलोकनि रंग भरी 'रसखानि' खरी मुसकानि सुहाई।
बोलत बैन अमीरस दैन महारस ऐन सुने सुखदाई॥
सजनी बन में पुर बीथिन में पिय गोहन लागि फिरौं न रो माई।
बाँसुरी टेर सुनाइ अली अपनाइ लई ब्रजराज कन्हाई॥

इस बाह्य सौंदर्य के चित्रण करने का कारण कदाचित् यह हो सकता है कि भक्त होने के पूर्व वे रूप-सौंदर्य के पुजारी थे। कृष्ण की ओर इनका मन भी फिरा था तो उनके स्वरूप की छटा ही देखकर, अत बहुत संभव है कि इसीलिये रूप-वर्णन में इनका मन अधिक लगा हो।

संयोगपक्ष तथा वियोगपक्ष प्रेमलक्षणा-भक्ति के कोमल वृत्ति वाले कवियों में एक भेद और होता है। कुछ कवि संयोगपक्ष अर्थात् प्रेम की सुखद तथा मधुर भावना की व्यंजना करते हैं और कुछ वियोगपक्ष के आधार पर विरह-ताप का वर्णन करते हैं। रसखान ने वियोगपक्ष का वर्णन न करके संयोगपक्षान्तर्गत सुखद भावना को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। केवल दो ही चार सवैया हैं जिनमें कृष्ण के चले जाने पर—गोपियों की व्याकुलता का चित्रण किया गया है। प्राय सभी कवित्त-सवैयों में गोपी-कृष्ण के सम्मिलन की या छेड़-छाड़ की रचना है। कृष्ण की तिरछी चितवन, रूपमाधुरी तथा मुरली की ध्वनि में गोपियाँ बेसुध अवश्य हैं, उन्हें तन-मन की सुधि नहीं है काम-काज में जी नहीं लगता, हृदय में दिन-रात एक प्रकार की कसक बनी रहती है किंतु फिर भी उन्हें कृष्ण का वियोग नहीं है। कृष्ण के वृन्दावन छोड़कर मथुरा में रहने के दो ही चार छंद हैं। गोपियों की व्याकुलता का कारण कृष्ण की छवि से उन्हें मिलता हुआ आनन्द ही है। सूरदास की गोपियों की भाँति रसखान की गोपियाँ।

> **मधुबन तुम कत रहत हरे।**
> **बिरह-बियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे॥**

अथवा 'निसि दिन बरसत नैन हमारे' नहीं कहतीं। रसखान के पीछे घनानंद अच्छे कवि हुए हैं, जिन्होंने गोपियों की विरहव्यथा को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। घनानन्द की गोपियाँ कहती हैं—

बिरह-बिथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन्ह पायन की हा हा नेंकु आनि दै।

*

मूरति मया की हा हा सूरति दिखैये नेकु
हम खोय या बिधि हा कौन धौं लहा लहौं।

*

सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवौ। दरस प्यासी मर तिनको जियावौ।।

रसखान की सखियों पर अभी इतना संकट नहीं पड़ा कि कृष्ण-दर्शन को असंभव समझकर उनके पैरों की धूलि में ही सन्तोष करने की लालसा करें। वे तो कृष्ण की छेड़खानी में ही परेशान हैं। रसखान के मन में वियोग-पक्ष की भावना जगी ही नहीं, वे तो आनन्द में मग्न करने वाला आनन्दमय काव्य रचना चाहते थे। कहीं-कहीं वियोग-व्यथा का वर्णन करते-करते सहसा संयोगपक्ष में आ गये हैं। पूरे एक सवैया में भी विरह-वर्णन का निर्वाह न कर सके। वह सवैया देखिये—

'रसखानि' सुन्यो है बियोग के ताप मलीन महादुति देह तिया की।
पंकज सो मुख गो मुरझाइ लगैं लपटैं बिरहागि हिया की।।
ऐसे में आवत कान्ह सुने, हुलसी तुलनी तरकी अँगिया की।
यों जग जोति उठी तन की उसकाइ दई मनो बाती दिया की।।

कृष्ण-विरह में गोपी की बुरी गति हो गई थी किन्तु सहसा कृष्ण का आगमन सुनकर उसकाई हुई दीपक की बत्ती के समान उसके शरीर में ज्योति जग उठी और प्रसन्न हो गई। संयोग और सुख-पक्ष को रसखान में जितनी प्रधानता है, उतनी ही प्रधानता घनानन्द में वियोग और दुख-पक्ष की है। रसखान और घनानन्द के जीवन-चरित्र में भी कुछ ऐसा ही अन्तर

है। रसखान को जब शोभा-सागर कृष्ण मे प्रेम हो गया था तब उन्होंने अपनी मानिनी या वैस्यपुत्र का साथ छोड़ा, किंतु घनानन्द का जब इनकी प्रेमिका सुजान से वियोग हो गया तब कृष्ण के प्रति उनका प्रेम बढा। घनानन्द को भक्त होने पर भी, सुजान के विरह की लपटें कभी-कभी लग जाया करती थी, और रसखान तो सपूर्ण रसों की खान आनन्द-निधान श्रीकृष्ण को ही पा गये थे, फिर उन्हे वियोग कैसे सूझता ? दोनों कवियों के दो-दो सवैये यदि देख लिये जाँय तो अतर स्पष्ट हो जायगा। घनानन्द का वर्णन देखिए——

रग लियो अबलान के अग तें च्वाय कियो चित चैन को चोवा।
औंर सबै सुख मोधे सकेल मचाय दियो घन आनद ढोवा।
प्रान अबीरहि फेंट भरे अति छाक्यौ फिरै मति की गति खोवै।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यो बिरहा भयो फाग बिगोवा॥

*

साँधे की बास उसासहि रोकत चदन दाहक गाहक जी कौ।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही कौ॥
राग बिराग धमार त्यों धार सी लौटि परयो ढँग यो सब ही कौ।
रग रचावन जान बिना 'घन आनद' लागत फागुन फीकौ॥

होली के अवसर पर घनानन्द की गोपियों की क्या दशा है, यह आप देख चुके, अब उसी अवसर पर रसखान की गोपियों को देखिए, कैसा आनन्द कर रही है, किस प्रकार उमग निकाल रही है ——

फागुन लाग्यो सखी जब तें तब तें ब्रजमडल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचै नहि एक बिसेख यहै सब प्रेम अच्यो है॥
साँझ सकारे वही 'रसखानि' सुरग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भई, अरु कौन भटू जिहि मान बच्यो है॥

आवत लाल गुपाल लिये मग, सूने मिली इक नार नवीनी।
त्यों 'रसखानि' लगाइ हिये भटू मौज कियो मन माहिं अधीनी।।
सारी फटी सुकुमारी हटी अँगिया दरकी सरकी रँगभीनी।
गाल गुलाल लगाइ, लगाइ कँ अंक रिझाइ बिदा कर दीनी।।

इस प्रकार हम देखते है कि रसखान मधुर तथा आनन्द पक्ष के कितने प्रेमी और पोषक थे। रोरिया का हाय-हाय वाला रूप इन्होंने नही लिया।

परिस्थिति-निर्माण काव्य मे परिस्थिति (Atmosphere) का बहुत व्यापक प्रभाव पडता है। वर्णन का आकर्षक, प्रभावशाली, सरस अथवा फीका होना उसकी परिस्थितियों पर निर्भर है। प्रेम-चित्र के लिये प्रेममय सुन्दर तथा मधुर परिस्थिति का निर्माण करना आवश्यक है। वीररस उत्पन्न करने के लिये उसके अनुकूल परिस्थिति तैयार करनी पडती है। काव्य ही क्या भाषण मे भी वक्ता अपनी बात कहने के पूर्व बातो द्वारा वैसी परिस्थिति का निर्माण कर लेता है, लेखक भी भूमिका से यही कार्य करता है। बिना परिस्थिति के चित्र अधूरा लगता है, उसमे रसोद्रेक की शक्ति नही होती। विशेषकर वहिवृत्ति वाले बिना इसके सफल हो ही नही सकते। वहिर्मुखी कवियों का मुख्य साधन, मुख्य आधार तथा मुख्य बल परिस्थिति-सृजन ही है। जिन कवियो मे यह नही हो सका उनकी कविता निम्न कोटि मे जाकर साहित्य ससार से दूर जा पडी और जिन्होंने इसका उपयोग किया, वे अब भी अपनी रचनाओ के साथ सहृदय पाठको द्वारा स्मरण किये जाते है। कहने की आवश्यकता नही कि यह शक्ति रसखान मे अत्यधिक मात्रा मे थी। उन्होने भाव के अनुकूल ऐसी परिस्थिति खडी की है जिससे उनकी रचना मे बडी प्रभावोत्पादकता आ गई है। इनके पास यही तो एक विशेष शक्ति थी। इसी विशेषता के कारण अत्यत प्राचीन काल से कही आती हुई बाते भी इनकी कविता मे आकर पिष्टपेषित नही

विभिन्न होती उनमे एक नवीनता तथा आकर्षण आ गया है। परिस्थिति का प्रभाव इस बात से भली भाँति समझा जा सकता है कि नाटक या सिनेमा मे किसी विशेष घटना के अनन्तर, विशेष परिस्थिति मे गाया हुआ गीत कितना भला मालूम पड़ता है। किंतु जब उसी को हम अपने घर आकर गाने लगते हैं तो उसमे वह सरसता वह प्रभाव नही रह जाता। रसखान के एक सवैया को देखिए, उन्हे केवल यह कहना था कि कृष्ण आ रहे है, कितनी सीधी सी बात है। मूल रूप मे इसमे कोई प्रभाव नही, कोई रस नही, क्योकि बहुत समय बाद कही बाहर से नही आ रहे हैं। ऐसी बात होती तो उसका महत्त्व अवश्य होता, किंतु कृष्ण साधारण रूप से आ रहे है या कहिए कि रोज की तरह गुजर रहे हैं। इसी सीधी सी बात को रसखान ने परिस्थिति तैयार करके कितना सरस तथा मधुर बना दिया है, उसे देखिए—

> गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल
> आगे गैया पाछे ग्वाल गावैं मृदु तान री।
> जैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर तैसी
> बंक चितवनि मंद मंद मुसकानि री॥
> कदम बिटप के निकट तटनी के आय
> अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री।
> रस बरसावै, तन तपन बुझावै नैन—
> प्रानन रिझावै वह आवै 'रसखानि री॥

मुख्य बात को अंत तक छिपाकर पहले कैसी सुन्दर परिस्थिति तैयार की, जिसके माधुर्य की ओर पाठक या श्रोतागण आकर्षित हो जाते है, फिर अंत मे 'वह आवै रसखानि री' के आते ही वे मग्न होकर झूम पड़ते हैं। यह परिस्थिति वाला प्रभाव सभी स्थलो पर लक्षित होता है,

अत और उदाहरण देना अनुपयुक्त है। साधारण से साधारण बात में भी वे कितना रस ला देते हैं इसके प्रमाण में यही एक सवैया पर्याप्त है।

दृश्य चुनाव स्थितियां जनक होती हैं, अत उनके चुनाव में ही कवि की प्रतिभा का परिचय मिलता है। किन स्थितियों के चित्रण से इष्ट भाव पूर्ण रूप से व्यक्त होकर सरस हो जायगा, इसका विचार कवि का प्रथम कर्तव्य है। अनावश्यक दृश्यों के वर्णन में भाव में वह रस नहीं आ सकता। रसखान परिस्थिति के चुनाव में बड़े पटु थे। वे भली भाँति जानते थे कि कौन सी स्थितियां अपना काम करती हैं।

परिस्थितियों के चुनने में कवियों की प्रवृत्ति दो प्रकार की देखी जाती है। एक प्रवृत्ति वाले कवि तो वे होते हैं जो असामान्य दृश्यों पर ही दृष्टि डालते हैं। जिन दृश्यों पर सर्वसाधारण की दृष्टि नहीं जाती, उनका समावेश करके वे काव्य को प्रभावशाली बनाना चाहते हैं। ऐसे कवियों का कहना है कि जिस दृश्य को साधारण लोग देख रहे हैं या जान रहे हैं, उसका चित्रण करना कोई कला नहीं है, उससे कवि की शक्ति का पता नहीं चलता तथा वह उतना प्रभावशाली भी नहीं हो सकता। इसके विपरीत जो दृश्य सर्वसाधारण की दृष्टि से परे हैं, उनके चित्रण में ही कवि-कला है और उन्हीं में प्रभाव भी है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ जी के पितामह नारायण कवि का तो यह सिद्धान्त था कि काव्य में चमत्कार ही प्रधान है। वे चमत्कार को ही रस मानते थे। किंतु ध्यान देने की बात है कि चमत्कार प्रधान काव्य में अनुभूति की दोहरी धारा बहती है। हृदय एक समय में एक ही रस का अनुभव कर सकता है, यदि काव्य के नौ रसों में से किसी एक रस के साथ-साथ उसमें चमत्कार भी है तो आश्चर्य का भी अनुभव करना पड़ता है। इससे हृदय पर एक प्रकार का बोझा-सा पड़ता है और मुख्य रस की अनुभूति में व्याघात पहुँचता है। यदि कहीं चमत्कार की मात्रा अधिक हुई तो मुख्य रस दब जाता

है और आश्चर्य ही आश्चर्य का अनुभव होने लगता है। ऐसी दशा में पाठक मुँह फैलाकर चकित होकर रह जाता है। ध्यान देने की बात है इस प्रकार बीच-बीच में आश्चर्य-चकित होना कहाँ तक अच्छा है? आश्चर्य उत्पन्न करने वाले काव्य को काव्य न कहकर जादू का पिटारा कहें तो अधिक अच्छा है, क्योंकि जादू के प्रत्येक खेल को देखकर दर्शक मुँह बा देता है।

इस चमत्कारवाद को रसखान ने भ्रामक सिद्ध कर दिया। केवल बातों से ही नहीं, वरन अपने कवि कर्म से प्रत्यक्ष दिखा दिया कि रसोत्पत्ति के लिये चमत्कार अनिवार्य नहीं है। रसखान के सवैयों में कोई चमत्कार नहीं है, फिर भी उनसे रस टपका पड़ता है। महाचमत्कार-वादी केशव की कविता को निचोड़ने से भी रस नहीं निकलता, हाथों में पानी लगाकर निचोड़ें तो दो-एक बूँद टपक पड़ें तो टपक पड़ें।

असामान्य दृश्यों को चुनने वाले कवियों की बात हो चुकी, अब कुछ कवि ऐसे होते हैं जो सामान्य दृश्यों को ही ग्रहण करते हैं। प्रायः अच्छे कवि इसी प्रकार के होते हैं। ऐसे कवि कहते हैं कि जिन दृश्यों पर सर्व-साधारण की दृष्टि जाती है, यदि उन्हीं का वर्णन कलापूर्ण किया जाय तो पाठकों की समझ में शीघ्र आवेंगे और उनका प्रभाव भी अधिक पड़ेगा। अपरिचित दृश्यों के रखने से सम्भव है पाठक उन्हें समझने में उलझ जायँ और शीघ्र रस की अनुभूति न प्राप्त कर सकें। क्या कारण है कि सब की दृष्टि में आने वाले सामान्य दृश्य भी प्रभावशाली तथा सरस हो जाते हैं? बात यह है कि सामान्य दृश्यों का भी कवि ऐसा विधान करता है कि उनमें आकर्षण आ जाता है। कवि की योजना ही सफलता का कारण है। सामान्य दृश्यों का चित्रण करते समय कवि सोचता है कि इन दृश्यों पर सर्वसाधारण की दृष्टि पड़ी तो है, किंतु सब इनके सौंदर्य को समझ नहीं सके। अतः वे इन सामान्य दृश्यों के अपूर्व सौंदर्य पर प्रकाश डालते हैं।

रसखान की रचना पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य और विशेष दो प्रकार के दृश्यों द्वारा परिस्थिति-निर्माण करने वाले कवियों में रसखान प्रथम कोटि के कवि हैं। इनकी रचना का आनन्द लेने के लिये पांडित्य की आवश्यकता नहीं है। अल्प शिक्षित, स्त्री, पुरुष युवक, वृद्ध तथा पंडित सभी प्रकार के लोग इनके काव्य का रसास्वादन कर सकते हैं। प्रवाहमय तथा सरल भाषा के साथ-साथ इनके दृश्य सर्वसाधारण से परिचित होते हैं, यही इनके काव्य की मुख्य विशेषता है।

रचना का वर्गीकरण विषय के अनुसार इनकी रचना तीन दृष्टि-कोणों का एक त्रिभुज बनाती है तीन पक्ष स्पष्ट लक्षित होते हैं, इनकी रचना का एक भाग ऐसा है जिसमे रसखान एक शुद्ध भक्त के रूप मे अपने इष्टदेव की प्रशंसा या प्रार्थना करते पाये जाते है। इसी मे पाठकों को उपदेश भी दिया गया है कि यदि कृष्ण से प्रेम नहीं तो संसार के सारे वैभव व्यर्थ है, अतः कृष्ण से प्रेम करो। 'प्रेमवाटिका' भी इसी के अंतर्गत आ जाती है, क्योंकि इन्होंने प्रेम को भक्ति का ही स्वरूप दिया है। भगवान् की भक्तवत्सलता पर विश्वास के छंद भी इसी में आयेंगे जैसे—

बाँसुरीवारो बडो रिझवार है सीर हमारे हिये की हरैगो।

रसखान की स्वाभिलाष भी इसी वर्ग मे आयेगी जैसे—

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन' आदि

इस वर्ग मे लगभग दस सवैये हैं, जिनमे कृष्ण तथा गोपियों के प्रेम की व्यंजना नहीं है और न कृष्ण का रूप ही वर्णित है। इनमे कृष्ण को परात्पर ब्रह्म मानकर उन्हें पतित-पावन समझ कर उनका गुण गाया गया है। रसखान ने अपने अस्तित्व का कृष्ण मे लय करने की अभिलाषा प्रकट करके अपनी भक्ति का परिचय दिया है। ये ही सवैये रसखान को भक्त-कवियों की पंक्ति मे निःसंकोच ला खड़ा करते है। इन्हीं के

आधार पर रसखान को भक्त मान लेने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी।

रचना का दूसरा दृष्टिकोण वह है जिसमें कृष्ण के रूप-माधुर्य का वर्णन किया गया है और जिसमें कृष्ण-लीलाओं का भी वर्णन है। इन छंदों में अवश्य कुछ शृंगारिकता आ गई है, जो ऐसे विषय के लिये अनिवार्य है। कृष्ण-छवि-वर्णन में तो रसखान का सौंदर्य-प्रेम झलकता है, किंतु जहाँ कृष्ण की छेड़-छाड़ अथवा उनके उत्पातों का वर्णन है वहाँ शृंगार की भावना ही पुष्ट होती है। फिर भी कृष्ण-काव्य के अनेक कवियों की भाँति इनका शृंगार अश्लीलता को नहीं प्राप्त होने पाया, इनका शृंगार सीमा के भीतर ही है।

परमानँद प्रभु सुरति समय रस मदन नृपति की सेना लूटी।
अथवा हितहरिवंश सुनि लाल लावण्य भिड़े प्रिया अतिसूर
सुख-सुरत संग्रामिनी।।

की भाँति रसखान का शृंगार-वर्णन नहीं है। उनकी दृष्टि सुरत ऐसे घोर शृंगारिक वर्णनों की ओर नहीं गई। रसखान के शृंगार में यही विशेषता है कि उसमें लौकिक पक्ष थोड़ा और आध्यात्मिक पक्ष अधिक है। इनके गोपी-कृष्ण सांसारिक नायिका-नायक-से नहीं लगते, वरन् उनमें कुछ देवत्व की झलक सदा और सर्वत्र लक्षित होती रहती है।

तीसरे वर्ग में ऐसे छंद हैं जिनमें गोपियों की कृष्ण दर्शन की आकुलता तथा प्रेम-पीर की व्याकुलता का वर्णन है। काव्य प्रक्रिया की दृष्टि से ये अवश्य शृंगारी कहे जा सकते हैं, किन्तु साथ ही साथ भक्ति-पक्ष में भी जा सकते हैं। रसखान का ऐसा एक भी छंद कदाचित् न मिलेगा जिसमें केवल शृंगार-पक्ष हो। यदि शुद्ध भक्ति-पक्ष का न होगा तो दोनों ओर उसका संकेत अवश्य होगा। बिहारी के दोहों में पाठक या श्रोता को

दृष्टि नायक-नायिका के आगे नहीं जा सकती, किन्तु रसखान के सवैयों में लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ओर दृष्टि जाती है। फलस्वरूप यह कहा जा सकता है कि रसखान का कवित्व भक्तिमय ही है।

६ रसखान का प्रेम-निरूपण

रसखान प्रेमलक्षणा-भक्ति के कवियों की कोटि के थे। कवित्त-सवैयों में राधा-कृष्ण तथा गोपियों के प्रेम की व्यंजना तो की ही है, 'प्रेमवाटिका' में प्रेमतत्त्व का स्वतन्त्र निरूपण भी किया है। प्रेम के संबंध में इनकी अपनी अलग धारणा थी। इन्होंने एक आचार्य की भाँति प्रेम का लक्षण, उसके भेद, उसकी व्यापकता तथा उसके प्रभाव का वर्णन किया है। प्रमाण देकर आगे स्पष्ट किया जायगा कि इन्होंने प्रेम-संबंधी शास्त्रों का अध्ययन भी किया था, केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ही सब कुछ नहीं कह डाला। प्रेमतत्त्व के निरूपण की दृष्टि से इनकी 'प्रेमवाटिका' विशेष महत्त्व की वस्तु है। अष्टछाप वाले कृष्णदास ने 'प्रेमतत्त्व-निरूपण' तथा रसखान के समकालीन ध्रुवदास ने 'नेहमंजरी', 'प्रेमलता' और 'प्रेमावली' आदि पुस्तकें लिखी हैं, किन्तु 'प्रेमवाटिका' सा विशद वर्णन उनमें नहीं है। उन लोगों की दृष्टि में केवल कृष्ण-प्रेम था और रसखान की दृष्टि में प्रेम का शुद्ध और सामान्य रूप था, इसीलिये इनका निरूपण पद्धति पूर्वक हुआ है।

अब इनके प्रेम का लक्षण देखिए। रसखान का कहना है कि प्रेम वही है जो गुण, रूप, यौवन, धन आदि की अपेक्षा न रखता हो, जिसमें स्वार्थ की गंध तक न हो और जो कामना से रहित हो। ठीक भी है किसी वस्तु की आशा करके स्वार्थवश किया हुआ प्रेम उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्वार्थ की सिद्धि या असिद्धि पर प्रेम का बढ़ना-घटना निर्भर रहेगा। और जो प्रेम बढ़-घट सकता है वह प्रेम नहीं

कहला सकता, स्नेह या मित्रता भले ही कहलाये। शुद्ध प्रेम धारण करने वाला प्रेमी अपने प्रिय से किसी प्रकार की आशा नहीं रखता, वह कामना रहित होता है। यह बात निम्नांकित दोहे से स्पष्ट है—

बिन गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल 'रसखानि'॥

प्रेम की इस स्वार्थ-हीनता को रसखान आगे चलकर और अधिक स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि प्रेम एकांगी होना चाहिए, अर्थात् प्रेमी का एक एकमात्र धर्म यही है कि वह प्रिय से प्रेम करे और उसे इस बात की इच्छा या प्रयत्न न करना चाहिए कि प्रिय भी उससे प्रेम करे। प्रिय का प्रेम करना तो दूर रहा यदि वह घृणा भी करे प्रेमी की ओर उपेक्षा कर ताके भी नहीं, तो भी प्रेमी के प्रेम में तनिक भी अन्तर न पड़ना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास जी के घन-चातक प्रेम का भी ठीक यही स्वरूप है। फारसी में भी प्रेम की यही पद्धति है कि माशूक के अनेक जुल्मोसितम करने तथा गालियाँ सुनाने पर भी आशिकों के प्रेम में रत्ती भर फर्क नहीं आता, प्रत्युत वे माशूकों के क्रोधपूर्ण चेहरे पर भी एक सौंदर्य देखते हैं। फारसी की इस प्रेम-पद्धति से रसखान अवश्य ही परिचित रहे होंगे, तभी तो कहते हैं कि बिना किसी कारण के एकांगी प्रेम होना चाहिए और प्रत्येक दशा में प्रेमी प्रिय को सर्वस्व समझे—

इकअंगी बिनु कारनहिं इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान॥

इस प्रकार रसखान ने पहले प्रेम का स्वरूप स्पष्ट किया है, फिर उस प्रेम को आनन्दस्वरूप मानकर उसके दो भेद किये हैं। एक विषयानन्द

या लौकिक प्रेम और दूसरा ब्रह्मानन्द या भगवत् प्रेम। इस दूसरे प्रकार के आनन्द या प्रेम को ये उच्चकोटि का मानते हैं। विषयानन्द को निम्न-कोटि का मानते हैं पर उसे भी प्रेम के अन्तर्गत ले लेते हैं—

आनँद अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानंद कै, ब्रह्मानंद बखान॥

इन विषयानन्द को ये शुद्ध प्रेम नहीं मानते। इनका शुद्ध प्रेम दम्पति-सुख तथा विषयरस से परे है—

दम्पतिसुख अरु विषयरस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनते परे बखानिये सुद्ध प्रेम 'रसखान'॥

ब्रह्मानन्द और विषयानन्द भेद के अतिरिक्त इन्होंने शास्त्रोक्त ढंग से प्रेम के दो परम्परागत भेद शुद्ध और अशुद्ध भी बतलाये हैं। जिस प्रेम के मूल में स्वार्थ रहता है वह अशुद्ध है, और जो प्रेम सहज तथा स्वाभाविक होता है वह शुद्ध है—

स्वारथ मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावऽनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल॥

'नारदादि प्रस्तार करि' से स्पष्ट लक्षित होता है कि रसखान ने 'नारद पञ्चरात्रि' तथा 'शांडिल्य सूत्र' अवश्य पढ़ा होगा। इन दो ग्रंथों में प्रेम की बड़ी विशद व्याख्या तथा सविस्तार सांगोपांग निरूपण है। 'नारद पञ्चरात्रि' के शुद्धाशुद्ध प्रेम की ओर ही रसखान ने संकेत किया है।

रसखान ने प्रेम मार्ग को सीधा भी कहा है और टेढ़ा भी। कमलनाल से भी क्षीण तथा खड्ग की धार से भी कराल बतलाते हैं। इनके यह

कहने का रहस्य यही हो सकता है कि एकांगी, सहज तथा स्वाभाविक प्रेम होना सरल नहीं है बड़ा दुर्लभ है। यदि हुआ भी तो उसका अन्त तक निर्वाह करना बड़ा कठिन है। बीच में तनिक भी मार्ग से हटे या भावना में तनिक भी शिथिलता आई कि दोनों दीन से गये, विषयानन्द या ब्रह्मानन्द कुछ भी प्राप्त न हो सकेगा, इसीसे यह टेढ़ा और खड्ग की धार है। सीधा कमलनाल से भी क्षीण इसलिये है कि है तो मन मानने की ही बात, मन में बैठ गई तो बैठ गई, चित्त पलट गया तो पलट गया। प्रेम प्राप्त करने के लिये तप या योग की भाँति किसी दुष्कर साधना की आवश्यकता नहीं है, हृदय को समझाने की बात है। यदि एक बार आपके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया और आनन्द मिलने लगा तो उत्तरोत्तर उसकी वृद्धि होती जायगी। ज्यों-ज्यों आनन्द बढ़ेगा त्यों-त्यों प्रेम दृढ़ होगा, ज्यों-ज्यों प्रेम दृढ़ होता जायगा आनन्द में वृद्धि होती जायगी। रसखान ने कहा है—

> कमल तंतु सों छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।
> अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम - पंथ अनिवार॥

रसखान के लगभग सौ वर्ष बाद ब्रजभाषा के अनोखे तथा उद्भट कवि घनानन्द हुए हैं, जिन्होंने प्रेम का मार्ग अत्यन्त सीधा बतलाया है। उन्हें प्रेम में तनिक भी सयानापन या बाँकपन नजर नहीं आया। वे प्रेम की सिधाई को बतलाकर कृष्ण को उपालंभ देती हुई गोपियों से कहलाते हैं—

> अति सूधो सनेह को मारग है जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
> तहँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं॥
> 'घन आनँद' प्यारे सुजान सुनो इत एक ते दूसरो आँक नहीं।
> तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

मन लेकर छटाँक भी न देने का भाव रसखान का ही है, ठीक इसी आशय का निम्नाङ्कित दोहा रसखान का है—

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटाँक नहिं देत।
यहै कहा पाटी पढ़ी, दल को पीछो लेत॥

रसखान के समान घनानद ने प्रेम-मार्ग को टेढ़ा तथा खड्ग की कठिन धार नहीं कहा, वे उसे अत्यन्त सरल मानते हैं। देखने में तो दोनों कवियों में प्रत्यक्ष अन्तर मालूम होता है किन्तु ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जायगा कि रसखान ने जिस विषय की कठिनता या सरलता को बताया है उस विषय में घनानद कुछ भी नहीं कहते। उनका विषय ही दूसरा है। रसखान ने प्रेम प्राप्ति की भावना को सरल तथा कठिन दोनों कहा है और घनानन्द भावना की कोई चर्चा नहीं करते। उनका कहना है कि प्रेम मार्ग में चतुराई के लिये कोई स्थान नहीं है, उसमें सिधाई और स्वच्छ हृदय की ही आवश्यकता है। रसखान का टेढ़ापन साधना की कठिनता है और घनानन्द का बाँकपन चतुराई या कपट है। प्रेम-प्राप्ति की साधना की कठिनता या सरलता के विषय में घनानन्द का क्या मत है, इसका उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया है।

घनानद के लगभग पचास वर्ष पीछे बोधा नाम के एक प्रसिद्ध और भावुक कवि हुए हैं, जिन्होंने प्रेम-मार्ग को रसखान की भाँति महा कराल, तलवार की धार तथा मृणाल के तार से भी क्षीण कहा है किन्तु सीधा नहीं कहा। इनका मत घनानन्द के बिल्कुल प्रतिकूल है। घनानद ने कहा। 'अति सूधो सनेह को मारग है' तो बोधा ने कहा 'प्रेम को पंथ कराल महा'। बोधा का सवैया देखिए—

अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई-बेह ते द्वार सँकीन तहाँ परतीत को टाँडो लदावनो है॥

कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापे न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार प धावनो है॥

रसखान ने शुद्ध प्रेम की पहचान भी बताई है। वे कहते हैं कि जिस प्रेम के प्राप्त होने पर बैकुंठ या ईश्वर की भी इच्छा न रह जाय, उसे शुद्ध प्रेम समझना चाहिए—

जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध, सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥

और भी लक्षण बताते हैं—

डरैं सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहि कै, प्रेम बखानौं सोय॥

केवल दो मनों को मिलाने वाले प्रेम से रसखान संतुष्ट नहीं थे। उनके प्रेम का स्वरूप तब खड़ा होता है जब दो मनों के साथ-साथ दोनों तन भी मिल जाय। यह प्रेम-दशा की चरम सीमा है, जो लौकिक पक्ष में या इस लोक में सम्भव नहीं है। इसके लिये लोक, प्राण, शरीर सब कुछ छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि प्रेम की ममता तन की ममता से अधिक होती है—

जग में सब तें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहू ते अधिक, प्यारो प्रेम कहाय॥

रसखान कहते है कि दो मनों को एक होते बहुत देखा सुना जाता है, किन्तु वह प्रेम का सच्चा रूप नहीं है। सर्वोत्तम प्रेम वही है जब दो तन एक हो जायँ—

दो मन इक होते सुन्यो, पै वह प्रेम न आहि।
होइ जबै द्वै तनहु इक, सोई प्रेम कहाहि॥

और इस प्रेम के उदाहरण-स्वरूप उन्होंने लैला-मजनू के प्रेम को रक्खा है। लैली के प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूं जहं एक में, मन मिलाइ महबूब॥

केवल लैला-मजनू के प्रेम की चर्चा करके ही रसखान ने अपने कर्तव्य की इति नहीं समझी। वे इतने में संतुष्ट न हो सके। उनके ध्यान में आया कि कृष्ण-प्रेमियों का दृष्टांत दिये बिना विषय अधूरा ही रहेगा, अतः इस प्रेम-सुधा को प्राप्त करने वालों का वर्णन किया—

जदपि जसोदा नंद अरु, ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम की, गोपी भईं अनन्य॥

वास्तव में गोपियों के प्रेम को समझना भी किसी बिरले अनन्य प्रेमी का ही काम है। गोपियों के प्रेम के आगे ग्वालबाल, नंद, यशोदा यहां तक कि स्वयं कृष्ण का प्रेम भी फीका पड़ जाता है। रसखान को पूरा विश्वास था कि उस प्रेम-रस का स्वाद अब संसार में किसी को प्राप्त नहीं हो सकता, इसीलिये वे कहते हैं—

वा रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि॥

'प्रेम में नेम नहीं' यह प्रसिद्ध कहावत है। इसी मत के मानने वाले रसखान भी थे। नियम तो वहीं होता है जहाँ प्रेम के लिये कोई कारण अपेक्षित रहता है किन्तु शुद्ध और सहज प्रेम में नियमों का पालन हो ही कैसे सकता है? लोक-मर्याद तथा नियमों की तो बात ही क्या वेद-मर्याद को भी एक ओर रख देना पड़ता है—

लोक बेद मरजाद सब, लाज काज सदेह।
देत बहाये प्रेम करि, बिधि निषेध को नेह।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'ज्ञानहि भक्तिहि नहि कछु भेदा' कहकर अपना मत प्रकट कर दिया है कि ज्ञान और भक्ति मे कोई विशेष अंतर नही है। गीता मे कर्मयोग प्रधान कहा गया है किन्तु रसखान की दृष्टि मे ज्ञान, कर्म और उपासना तीनो से प्रेम श्रेष्ठ है, ये प्रेम को ही प्रधानता स्वीकार करते है—

ज्ञान कर्मऽरु उपासना, सब अहमिति को मूल।
दृढ निश्चय नहि होत बिन, किये प्रेम अनुकूल।।

कोरे ज्ञानियो और शास्त्रज्ञो को कबीर की भांति रसखान ने भी फटकार बताई है। प्रेम के साथ यदि ज्ञान भी हो तब तक तो कोई हानि नही किन्तु बिना प्रेम का ज्ञान किसी काम का नही है—

भले बृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढाय।
बिना प्रेम फीकौ सबै, कोटिन किये उपाय।।
शास्त्रन पढि पडित भये, कै मोलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो 'रसखान'।।

प्रेम के झोके मे ये यहा तक कह गये है—

ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती, मत, विश्वास, विवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक।।

'अनबूडे-बूडे' वाला बिहारी का विरोधाभास-भाव का दोहा, रसखान प्रेम के विषय मे पहले ही कह गये है—

प्रेम-फाँस में फँसि मरै सोई जिये सदाहि।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोऊ जीवत नाहिं॥

शुद्ध प्रेम का हृदय के अन्य विकारों से बड़ा विरोध है। किसी एक भी विकार के रहते हुए हृदय में शुद्ध प्रेम नहीं टिक सकता, साथ ही हृदय में शुद्ध प्रेम की स्थापना हो जाने से फिर कोई विकार नहीं टिक सकता। रसखान ने मुनिवरों का प्रमाण देकर इस बात को कहा है कि प्रेम सब विकारों से रहित होता है--

काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सब ही तें प्रेम है, परे, कहत मुनिवर्य॥

यह जीवन-मुक्त की अवस्था है, तभी तो प्रेम और हरि में कोई अन्तर नहीं कहा। यदि प्रेम रहते हुए भी ये विकार रहे तो हरि भी सविकार हो जायगे। प्रेम को हरि का स्वरूप देते हुए कहते हैं—

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप॥

इतना ही नहीं, प्रेम को हरि से भी श्रेष्ठ ठहराया है क्योंकि सृष्टि को अपने आधीन रखने वाले हरि भी उसके आधीन रहते हैं—

हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम-आधीन।
याही ते हरि आपुही, याहि बड़प्पन दीन॥

'वेदोऽखिलोधर्म मूलम्' अर्थात् समस्त धर्मों का मूल वेद है, इस बात की ओर संकेत करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम धर्म से भी श्रेष्ठ है। प्रेम के इस गूढ़ निरूपण से विदित होता है कि उनका अध्ययन भी किसी शास्त्र से अछूता था। रसखान कहते हैं—

वेद मूल सब धर्म यह कहै सबै श्रुतिसार।
परम धर्म है ताहु तें प्रेम एक अनिवार॥

इतना ही नही, वेद-पुराणो का मूल तत्त्व भी प्रेम ही है—

श्रुति, पुरान, आगम, स्मृतिहि, प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार॥

रसखान ने भारतीय प्रेम का शुद्ध स्वरूप वर्णित किया है किंतु इनके प्रेम की व्यापकता को देखकर सदेह होता है कि इन पर प्रेममार्गी सूफियो का भी कुछ प्रभाव था। यह कोई आश्चय की बात नही है, क्योकि प्रेमलक्षणा भक्ति के सभी कवियो पर सूफी कवियो का थोड़ा-बहुत प्रभाव पडा है। सूफी कवि प्रेमी का रूप बहुत व्यापक मानते है। सृष्टि के अणु-अणु मे कारण मे, काय मे, कर्ता मे सब मे वही प्रेम उन्हे लक्षित होता है। ठीक यही स्वरूप रसखान के प्रेम का भी था। उन्होंने भी प्रेम को सर्वत्र देखा है, यह बात इनके दो दोहों से स्पष्ट हो जायगी—

वही बीज अकुर वही, एक वही आधार।
डाल, पात, फल, फूल सब, वही प्रेम सुखसार॥
कारज कारन रूप यह, प्रेम अहै 'रसखान'।
कर्ता, कर्म, क्रिया, करण, आपहि प्रेम बखान॥

उपर्युक्त विवेचन से भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि रसखान ने प्रेम का अत्यत विशद तथा सूक्ष्म वर्णन किया है। प्रेम-निरूपण मे इनकी वृत्ति खूब रमी है। ऐसा करने मे इन्होंने न तो बेगार ही टाला है और न केवल सुनी-सुनाई बातो को आधार बनाया है, वरन् इस विषय का अध्ययन करके विचारपूर्वक लिखा है। यही कारण है कि इनकी 'प्रेमवाटिका' सदा हरी-भरी रहने वाली रमणीय वाटिका बन सकी है।

७ रसखान की भक्ति-भावना

अवतार की भावना रसखान ब्रज भाषाभाषी भक्त-कवि थे, अत इनकी भक्ति-भावना पर विचार करने के पूर्व ब्रज के अन्य भक्त-कवियो की भक्ति-भावना पर विचार करना अनुपयुक्त न होगा। श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक तथा ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास जी की कविता पर विचार करने से पता चलता है कि वे कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते थे। कई स्थानो पर उन्होंने ब्रह्मा और शकर से श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को बताया है किन्तु विष्णु से श्रेष्ठ कही नही कहा। ब्रह्मा कृष्ण बाल-लीला देखकर चकित हो जाते थे, शकर तो उनका दर्शन करने के लिये नित्य नया स्वाँग भरकर आते थे, किंतु विधि और हर की भाँति हरि की कोई ऐसी चेष्टा सूरदास जी ने नही दिखाई जिससे कृष्ण विधि हरि हर से परे होकर परात्पर ब्रह्म के रूप मे दिखाई पड़ते। गोस्वामी तुलसीदासजी के श्रीराम 'विधि हरि शभु नचावन हारे' थे किंतु सूरदास जीके श्रीकृष्ण भक्तो को प्रेम-सुख देने के लिए सगुण रूप मे अवतरित हुए थे। यद्यपि सूरदास जी के श्रीकृष्ण भी अपने मुख मे यशोदा को सारा ब्रह्माण्ड दिखा देते हैं, जैसे गोस्वामी जी के श्रीराम ने कौशल्या को अपने रोम-रोम मे ब्रह्माड दिखाया था, किंतु फिर भी श्रीकृष्ण मे परम अक्षर ॐ परात्पर ब्रह्म की वह भावना नही है जो श्रीराम मे है। कबीर ने भी कही-कही राम कृष्ण का प्रयोग किया है, किन्तु राम-कृष्ण से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्म से है, यह अत्यन्त स्पष्ट है। वे तो एक अखड ज्योति, प्रकाश अथवा शक्ति जो कुछ भी कह उसी को परमेश्वर मानते थे। कबीर के निर्गुण ब्रह्म के सामने ब्रह्मा, विष्णु, महेश की कुछ भी सत्ता न थी।

सूरदास जी के श्रीकृष्ण, गोस्वामी जी के श्रीराम तथा कबीरदास के निर्गुण ब्रह्म की विशेषता पर दृष्टि रखते हुए यह देखना होगा कि रसखान

की भक्ति-भावना इन्ही में से किसी से मिलती है अथवा इनकी भावना पृथक् है। रसखान की रचना पर विचार करने से विदित होता है कि इनकी भक्ति-भावना सूरदास जी जैसी ही है। इनके श्रीकृष्ण भी ब्रह्मा और शकर से श्रेष्ठ है किंतु विष्णु से नही। रसखान ने भी कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप मे चित्रित किया है। यद्यपि इनके कृष्ण का भी पार ब्रह्मा, शकर, योगी, वेद तथा पुराण नही पाते, तथापि कबीर के निर्गुण ब्रह्म की कोटि के नही हैं, यह बात निम्नांकित सवैये से स्पष्ट है—

> गावै गुनी गनिका गधर्व, औ सारद सेस सबै गुन गावत।
> नाम अनत गनत गनेस सो, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
> जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरतर जाहि समाधि लगावत।
> ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

यहाँ अन्य देवताओ के साथ त्रिदेवो मे केवल ब्रह्मा और त्रिलोचन का वर्णन है, विष्णु का नाम नही आया क्योकि इनकी भावना से विष्णु ही तो कृष्ण है। इसी प्रकार के और भी दो-तीन छद है जिनमे ब्रह्मा और शकर का ही नाम है विष्णु का नही। विष्णु का पर्याय हरि शब्द रसखान ने कृष्ण के लिये कई स्थानो पर प्रयोग किया है।

> मेरी सुनो मति जाइ अली उहा जौनी गली हरि गावत है।

*

> समझी न कछू अजहू हरि सो ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै।

रसखान के एक छद को सरसरी दृष्टि से देखने से भ्रम होता है कि इनके कृष्ण और कबीर के निर्गुण ब्रह्म मे कोई अतर नही है, किंतु बात ऐसी नही है। यह सवैया देखिए—

ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहू न कहू वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
हेरत हेरत हारि परयो 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन॥

रसखान का तात्पर्य यह है कि वह ब्रह्म जो निर्गुण-निराकार-अगोचर है, वही अपने भक्तों के कल्याण के लिये सगुण रूप धारण करके उन्हें आनन्द देता है। कबीर का ब्रह्म तो केवल अपनी इच्छाशक्ति या कृपा द्वारा भक्तों का कल्याण करता है कोई रूप नहीं धारण करता। अतः कबीर के ब्रह्म से रसखान के कृष्ण का अंतर स्पष्ट है। यहाँ राधिका से भक्त जनों का तात्पर्य समझना चाहिए। रसखान के कृष्ण इतने उदार तथा करुणागार है कि केवल भक्तों के संकट दूर करके तथा उन्हें आनन्द देकर भी संतोष नहीं कर लेते वरन् आप को उनका दास तक बना लेते हैं, अपने से श्रेष्ठ अपने भक्तों को समझते हैं, तभी तो राधा के पैरों पर लोटते हैं और ग्वालबाला को कंधे पर चढ़ा कर घुमाते हैं। रसखान ने 'प्रेमबाटिका' में भी भक्तों को हरि से श्रेष्ठ बताया है। एक और स्थल पर कृष्ण को निर्गुण-निराकार बताते हुए भी उन्हें सगुण रूप में ला कर अहीर की छोकरियों द्वारा नचवाते हैं—

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

अवस्था की दृष्टि से कृष्णलीला-वर्णन सूरदास जी ने जिस रुचि तथा तन्मयता के साथ कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है, उस रुचि और तन्मयता के साथ उनके यौवन-लीलाओं का वर्णन नहीं

किया। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण की बाल तथा तरुण दोनों लीलाओं का समान रूप से वर्णन किया है। रसखान ने एक ही पक्ष लिया है, किंतु सूरदास वाला पक्ष न लेकर कृष्ण की यौवन-लीलाओं का ही वर्णन किया है। वात्सल्य-भावना ने रसखान को आकर्षित नहीं किया, वे तो प्रेम के दीवाने थे। लौकिक प्रेम-क्षेत्र से मन हटाकर अलौकिक प्रेम-क्षेत्र की ओर लगाया था, अतः कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन करना उनके लिये स्वाभाविक ही था। उनकी सम्पूर्ण रचना में केवल दो सवैये ऐसे हैं जो कृष्ण की बाल्यावस्था के समय के हैं, अन्यथा सर्वत्र प्रेम ही प्रेम छाया है। कहीं गोपियाँ उनके प्रेम में सुध-बुध खो बैठी हैं, कहीं कृष्ण की दृष्टि में न पड़ने की शिक्षा एक सखी दूसरे को दे रही है, कहीं दूध लिए हुए गोपियों को कृष्ण छेड़ रहे हैं, कहीं कृष्ण की बंशी सारे गाँव में विष फैला रही है तथा कहीं कृष्ण होली के अवसर पर किसी गोपी की दुर्गति कर रहे हैं आदि आदि। बाल्यावस्था के उन दो सवैयों में एक यशोदा के सुख के विषय में है—

> **आजु गई हुती भोर ही हौं 'रसखानि' रई कहि नंद के भौनहिं।**
> **वाको जियो जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं॥**
> **तेल लगाइ लगाइ कैं अंजन भौंह बनाइ बनाइ डिठौनहिं।**
> **डारि हमेल निहारति आनन वारति ज्यों चुचकारति छौनहिं॥**

कृष्ण की बाल-क्रीडा में यशोदा को अकथनीय आनंद मिला, उसके वर्णन की ओर रसखान की प्रवृत्ति तनिक भी नहीं थी, केवल एक सवैया में यशोदा के सुख को दिखाकर सतोष कर लिया। उन्हें तो कृष्ण-प्रेम-जन्य गोपियों की हार्दिक टीस दिखाना इष्ट था, इसी में उन्होंने अपनी कवित्व-शक्ति का पूर्ण उपयोग किया। यद्यपि अध्ययन और सत्संग के कारण उन्हें कृष्ण की प्रायः सभी बाल-कथाएं विदित थीं, किंतु उन

प्रसंगो पर रचना करने का परिश्रम रसखान ने नही किया । दूसरा सवैया वह है जिसमे कृष्ण के हाथ मे कौए का रोटी छीन ले जाना वर्णित है—

> धूर भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
> खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछोटी॥
> वा छबि को 'रसखानि' विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
> काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सौं ले गयो माखन-रोटी॥

भाव भक्तगण अपने इष्टदेव पर भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव रखते है, कोई भगवान को स्वामीरूप मे, कोई सखारूप मे, कोई पतिरूप मे तथा कोई-कोई पुत्ररूप मे भी मानते है । दास्य, सख्य तथा वात्सल्य आदि भावो मे रसखान दास्य भाव को अंगीकार करने वाले थे । ब्रज के अन्य कवियो की भांति इन्होने अपने उपास्यदेव को न तो सखारूप मे समझा और न पुत्ररूप मे । ये अपने को श्रीकृष्ण का दास मानते थे। अपने उपास्यदेव को मित्र या पुत्र रूप मे देखने वाले कुछ अनोखे भक्त विरले ही होते है, क्योंकि यह मार्ग कठिन है। पहली बात तो यह है कि भगवान को मित्र या पुत्ररूप मे मानना लोग अशिष्टता समझते है तथा दूसरी बात यह है कि ऐसी भावना पूर्णरूप से आना कुछ कठिन भी है। इसमे पथभ्रष्ट होने की अधिक संभावना रहती है । ऐसी भावना कोई कोई ऊंचे महात्मा ही रख सकते है रसखान मुसलमानी धर्म त्याग कर हिंदू धर्म मे दीक्षित हुए थे, अत संभवत ऐसी अशिष्टता का साहस नहीं कर सके अथवा हो सकता है कि अपने को उस योग्य न समझा हो। प्राय दास्य भाव रखने वाले ही भक्त हुए है, सख्य या वात्सल्य भाव वाले महात्मा इने-गिने हुए है, कदाचित् इसीलिये रसखान ने भी वही मार्ग ग्रहण किया जो प्राय सभी भक्तो द्वारा ग्रहण किया गया था और जो सरल तथा स्वाविक था।

नवधा भक्ति की ओर दृष्टि डालते है तो पता चलता है कि रसखान

की प्रवृत्ति ण की ओर अधिक था। ये तन मन से श्रीकृष्ण के हो गये थे। पूर्व संस्कारों के प्रभाव के कारण पूजा-पाठ या ध्यान की ओर इनका मन लगना तो कठिन ही था, इन्होंने अपने हृदय को श्रीकृष्ण पर न्यौछावर कर दिया था और इसी आत्मसमर्पण को ही ये सर्वोपरि भक्ति समझते थे। इनके मत में श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ही संसार में केवल एक तत्त्व है, जिसके बिना संसार की सारी विभूति तुच्छ तथा व्यर्थ है—

कंचन मन्दिर ऊँचे बनाय के मानिक लाय सदा झमकावै।
प्रातहि ते सगरी नगरी गज-मोतिन ही की तुलानि तुलावै॥
पालै प्रजानि प्रजापति सों बन संपति सों मघवाहि लजावै।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि' जु साँवरे ग्वाल सों नेह न लावै॥

ये सामाजिक ऐश्वर्य को तो तुच्छ समझते ही थे, योग, जप, तप, तीर्थ तथा व्रत आदि को भी प्रेम के सामने व्यर्थ कहते थे। यहाँ पर सूफी मत का प्रभाव स्पष्ट है जिस मत में एकमात्र प्रेम की ही प्रधानता है। 'प्रेमवाटिका' में प्रेम की श्रेष्ठता देख ही चुके, अब एक कवित्त में भी वही भाव देखिए—

कहा रसखानि सुख संपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच नल,
कहा जीत लाये राज, सिंधु आर पार को॥
जप बार बार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को।
कीन्हो नहीं प्यार, नहीं सेयो दरबार, चित—
चाह्यो न निहारयो जो पै नन्द के कुमार को॥

प्रेम लक्षणा-भक्ति के अन्य कवियों ने लीलाओं का वर्णन किया तो है किन्तु उनके वर्णन में वह तन्मयता या गम्भीरता नहीं आई जो रसखान के सवैयों में पाई जाती है। रसखान के कृष्ण केवल काव्यगत आलम्बन नहीं थे, वरन् हृदयगत आलम्बन थे। इनका कहना था कि शरीर के सारे कार्य-व्यापार श्रीकृष्ण में ही सम्बन्धित रहने चाहिए, कृष्ण के लगाव के बिना कोई कार्य कुछ मूल्य नहीं रखता—

बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै, अरु पाइ वही जु वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों 'रसखानि' वही रसखानि जु, है रसखानि वहै रसखानी॥

अपने को इस प्रकार श्रीकृष्ण पर न्योछावर करके रसखान उन पर अटल विश्वास भी रखते थे। उन्हें अपने इष्टदेव की शक्ति तथा भक्तवत्सलता पर पूर्ण विश्वास था—

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम गेहनी कैसी तरी, प्रहलाद को कैसे हर्यौ दुख भारो॥
काहे को सोच करै 'रसखानि' कहा करिहै रविनन्द बिचारो।
कौन की संक परी है जु माखन चाखन हार सो राखनहारो॥

इसी विश्वास के बल पर वे और किसी को कुछ नहीं समझते थे। किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का उन्हें तनिक भी ध्यान न था। उनका विचार था कि हमें और किसी से क्या लेना-देना? हमारे सारे संकट तो कृष्ण ही दूर कर देंगे। रसखान के पहले के मुसलमानी संस्कार सब प्रकार से विलीन हो गये थे। ये हिन्दू संस्कृति और परम्परा में इस प्रकार घुलमिल गये थे कि यदि बताया न जाय तो पहचानना कठिन होगा कि ये मुसलमान घर

मे पैदा हुए थे। गणिका, गज, गिद्ध, अजामिल तथा गौतमपत्नी के द्वारा इतनी आत्मीयता भर दी है कि मुसलमानी संस्कारो की गंध तक नहीं आती। ये कृष्ण पर विश्वास रखकर बड़े-बड़े महाराजाओ तक की परवाह नहीं करते थे—

> देस बिदेस के देखे नरेसन रीझि की कोऊ न बूझ करैगो।
> तातें तिन्हें तजि जान गिर्‌यौ गुन सौ गुन औगुन गाँठ परैगो।
> बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है स्याम जुनेक सुढार ढरैगो।
> लाडलो छैल वही तौ अहीर कौ पीर हमारे हिये की हरैगो॥

मुक्ति की भावना योगी तथा भक्त अपने योग तथा भक्ति के बदले मे भगवान से भी कुछ चाहते है। यद्यपि इस प्रकार का चाहना सकाम-योग या भक्ति नहीं कहलायेगा, क्योकि ये सासारिक भोगो या स्वर्ग के सुखो की इच्छा न करके मुक्ति अथवा प्रभु-पद-प्रीति ही चाहते है, तथापि चाहते तो कुछ अवश्य हैं। निस्सदेह योगी तो मुक्तिलाभ के लिये ही योग-साधन करता है, वह अपनी सत्ता को नित्यसत्ता मे मिलाकर सदा के लिये विलीन हो जाना चाहता है, किन्तु भक्तो मे दो श्रेणियाँ है कुछ तो मुक्ति चाहते हैं और कुछ मुक्ति को तुच्छ समझते है। अधिकाश भक्त मुक्ति को अपने अनुकूल नहीं समझते, क्योकि मुक्ति द्वारा भगवान मे सदा के लिये लीन हो जाने से भक्ति-जन्य जो अपूर्व आनन्द उन्हे मिला करता है उससे वे वञ्चित हो जायेंगे। ऐसे भक्तो की दृष्टि मे मुक्ति का कोई मूल्य नहीं है। उनकी यही कामना रहती है कि जन्म-जन्मान्तर तक प्रभु के चरणो मे प्रीति बनी रहे। परम भक्त तुलसीदास जी भरत के द्वारा अपने हृदय की कामना बताते है—

> अरथ न धरम, न काम रुचि, गति न चहौं निरबान।
> जनम-जनम रति राम-पद, यह बरदान, न आन॥

मुक्ति की इच्छा रखने वाले महात्माओं मे भी कई भेद है। सभी एक ही प्रकार की मुक्ति नही चाहते, किसी का सालोक्य मुक्ति प्रिय है तो किसी को सारूप्य तथा कोई सामीप्य का इच्छुक है तो कोई सायुज्य का।

अब यह विचार करना है कि मुक्ति के विषय मे रसखान की क्या भावना थी? रसखान इन चारो प्रकार की मुक्ति मे से किसी के भी इच्छुक नही थे साथ ही भक्तो की भाँति केवल प्रभु-पद प्रीत मे ही सतुष्ट भी न थे। वे इस प्रेम के अतिरिक्त और भी कुछ चाहते थे। पुष्टिमार्ग के अनुसार ब्रज मे कृष्ण तथा गोपियो की नित्यलीला हुआ करती है। रसखान इस नित्यलीला मे अपना समावेश चाहते थे, उनकी इच्छा थी कि हम तन-मन से कृष्णलीला मे रम जायें, कभी साथ छूटे ही नही। निम्नांकित सवैये से उनकी मुक्ति के प्रति अनिच्छा तथा प्रत्येक दशा मे श्रीकृष्ण के सपर्क मे रहने की इच्छा प्रकट होती है—

> मानुष हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
> जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
> पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
> जो खग हौं तो बसेरो करौं निल कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

यह भली भाँति स्पष्ट हो गया कि रसखान न तो मुक्ति की कामना करते थे और न केवल हृदय मे भक्ति धारण करके मानसिक उपासना मे सतुष्ट थे। वे सच्चे प्रेमी की भाँति प्रिय के साथ रहने के इच्छुक थे।

नाम-रूप-लीला-धाम-वर्णन भक्तकवि अपने इष्टदेव के नाम-रूप-लीला-धाम मे से प्राय सभी का वर्णन करता है। तुलसीदास जी ने तो राम से कही अधिक महत्त्व राम के नाम को दिया है राम और नाम की तुलना मे नाम की श्रेष्ठता दिखाते हुए अत मे यहाँ तक कह दिया कि 'राम न सकहिं नाम गुन गाई।' इसी प्रकार प्राय सभी भक्त अपने

भगवान के नाम का माहात्म्य वर्णन करते हैं। नाम के अतिरिक्त इष्टदेव के रूप-सौन्दर्य, लीला, तथा लीला-स्थलों का भी वर्णन भक्त किया करते हैं। रसखान ने रूप तथा लीलाओं का वर्णन अधिक और धाम का बहुत थोड़ा किया है, किन्तु नाम का वर्णन कुछ भी नहीं किया। उनके लिये नाम-माहात्म्य कुछ नहीं था। 'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं' की भाँति रसखान ने कोई रचना नहीं की। वे जिस पथ के पथिक थे, उस पथ में नाम की कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। किसी का नाम तो उसकी अनुपस्थिति में लिया जाता है या बार-बार स्मरण किया जाता है। रसखान तो अपने को सदा श्रीकृष्ण के संग ही समझते थे और सदा संग रहने की इच्छा रखते थे, फिर उनके लिये नाम का महात्म्य क्यों होता? उन्होंने मन लगाकर अपने इष्टदेव की छवि, लीला तथा लीला-स्थान का वर्णन किया है। इनसे भी धाम से उनका कोई विशेष प्रयोजन न था, उन्हें तो केवल लीला करने वाले से और उसकी की हुई लीलाओं से मतलब था। फिर भी कृष्ण ने अमुक स्थान पर लीला की है इस नाते थोड़ा-बहुत प्रेम उन स्थानों के प्रति भी दिखाया है। रसखान के अनेक रूप-वर्णनों में से एक रूप वर्णन देखिये—

> कल कानन कुंडल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है।
> मुरली कर मै अधरा मुसकानि तरंग महाछबि छाजति है॥
> 'रसखानि' लखे तन पीतपटा सत दामिनि की दुति लाजति है।
> वह बाँसुरी की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में रसखान ने सारी शक्ति लगा दी है, उनमें से एक वर्णन देखिए—

> एक तें एक लौं काननि मैं रहै ढीठ सखा सब लीन्हे कन्हाई।
> आवत ही हौं कहाँ लौं कहौं कोऊ कैसे सहै अति की अधिकाई॥

खायो दह्यो मेरो भाजन फोरयो, न छोडत चीर दिखावे डुहाई।
'रसखानि' तिहारी सौं ऐरी जसोमति भागे मरू करि छूटन पाई।।

श्रीकृष्ण की लीला-भूमि गोकुल, यमुना-तट, वन, पवन तथा कुंजो मे रसखान को कितना प्रेम था यह 'मानुष हौं तो वही रसखानि' वाले सवैया' मे स्पष्ट है। निम्नांकित पंक्तियो मे भी धाम का कथन है—

'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हू कलधौत के धाम करील की कुंजनि ऊपर वारौं।।

राधा की भावना प्रत्येक कृष्ण भक्त-कवि के विषय मे यह विचारणीय है कि उसने कृष्ण के साथ राधा को कौन-सा स्थान दिया है? कुछ राधा को प्रेमिका अथवा सखी के रूप मे मानते है, कुछ राधा को कृष्ण की पत्नी मानकर युगुल जोड़ी की उपासना करने वाले है तथा कुछ राधा को कृष्ण से भी श्रेष्ठ उनकी स्वामिनी मानते है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि रसखान के उपास्यदेव राधाकृष्ण न होकर केवल कृष्ण थे राधा की कुछ भी चर्चा न करना तो कृष्ण-भक्त के लिए असभव-सा है, अत रसखान ने भी दो-चार स्थलो पर कृष्ण के साथ राधा का नाम ले लिया है किन्तु न तो राधा-कृष्ण की विशेष लीलाओ का नाम वर्णन किया है और न उनके प्रेम की पूर्ण प्रतिष्ठा ही की है। जिस प्रकार सूरदास जी ने पदो 'द्वारा, 'हरिऔध' जी ने 'प्रिय-प्रवास' द्वारा तथा 'रत्नाकर' जी ने 'उद्धवशतक' द्वारा राधा के अथाह वियोग-सागर मे सब को डुबोया है, उस प्रकार रसखान ने राधा का वियोग नही वर्णन किया। राधा का वर्णन रसखान ने नाममात्र को किया है। राधा से कही अधिक वर्णन तो गोपियो का है इससे पता चलता है कि राधा की ओर उनकी विशेष दृष्टि नही थी। राधा के विषय मे जो कुछ भी रसखान द्वारा लिखा मिले, उसे समझना चाहिए कि यो ही रस्म अदाई हुई है,

लिखने के अनुसार उनकी भावना नहीं समझनी चाहिए। उनकी हार्दिक भावना तो पहले ही बतलाई जा चुकी है कि उनके आलंबन केवल कृष्ण थे न कि राधा कृष्ण। कहने के लिये तो रसखान ने एक स्थान पर यह कह दिया है कि जिसे वेद-पुराण भी न ढूँढ सके जो कभी देखा सुना नहीं गया उसे देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत 'राधिका पायन' राधिका के चरण दबाते देखा। इसमें यह आशय न निकालना चाहिए कि रसखान राधा को कृष्ण से श्रेष्ठ समझते थे। वल्लभसम्प्रदाय में राधा की ही प्रधानता है। रसखान उस सम्प्रदाय से सहमत न होते हुए भी उससे परिचित तो अवश्य थे। अतः बहुत सम्भव है इसी के आधार पर ऐसा कह दिया हो। एक स्थल पर राधा-कृष्ण को दुल्हन-दुलहा के रूप में कहा है—

मोर के पखन मौर बन्यो दिन दूलह है अली नंद को नंदन।
श्री वृषभानु सुतो दुलही दिन जोरी बनी विधना सुखकन्दन॥

प्रेमबाटिका में दोनों को माली-मालिन बताया है—

प्रेम अयनि श्री राधिका, प्रेम बरन नँदनंद।
प्रेमबाटिका के दोऊ, माली-मालिन द्वंद॥

एक स्थान पर कृष्ण को राधा के प्रेम में अनुरक्त कहा है—

ऐसे भये तो कहा 'रसखानि' रसै रसना जो मुक्ति तरंगहिं।
दै चित ताके न रंग रच्यौ, जु रह्यो रचि राधिका रानी के रंगहिं॥

जो कृष्ण राधा के प्रेम में रंगे हुए हैं, यदि उन कृष्ण के प्रेम में कोई रँगा न तो कुछ न किया। अन्य उक्ति-पटु कवियों की भाँति रसखान ने यह नहीं कहा कि जब कृष्ण राधा के प्रेम में अनुरक्त

है तो तुम भी राधा की उपासना कर के उनके कृपापात्र बनकर कृष्ण का प्रेम प्राप्त करो। कृष्ण किसी पर अनुरक्त हुआ करे, रसखान को इससे कोई प्रयोजन नहीं, वे तो सीधे कृष्ण-प्रेम के अभिलाषी थे। राधा के विषय में दो-तीन स्थलों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से कुछ कहने पर भी यह स्पष्ट है कि राधा-वर्णन की ओर उनकी वृत्ति नहीं रमी। बिना राधा के कृष्ण-प्रेम में उन्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं प्रतीत होता था। संक्षेप में कह सकते हैं कि राधा की ओर उनकी दृष्टि न जाकर केवल कृष्ण की ओर थी।

धार्मिक कट्टरता का अभाव—यह सत्य और स्वाभाविक है कि प्रत्येक भक्त अपने इष्ट देव को सर्वश्रेष्ठ तथा महान् समझता है, किन्तु उसके साथ यह आवश्यक नहीं है कि वह दूसरों के इष्ट देव के प्रति विरोध का भाव धारण करे। जो उदार भक्त हैं वे यही कहते हैं कि हमारे उपास्यदेव हमारे लिये सर्वश्रेष्ठ हैं दूसरों को हम नहीं जानते। किन्तु अनुदार तथा कट्टर भक्त कहता है कि हमारे इष्टदेव सर्वश्रेष्ठ हैं और दूसरे उनके समक्ष तुच्छ हैं। तत्कालीन समय में—कुछ मात्रा में अब भी—ऐसे भक्तों की कमी नहीं थी जो कृष्ण-भक्त होने के कारण राम तथा शिव के नाममात्र से चिढ़ते थे और कहने वाले को मारने के लिये दौड़ते थे। उसी प्रकार राम-भक्त भी कृष्ण नाम सुनकर गाली खाने का-सा दुख अनुभव करते थे तथा चोर, लफंगा, उपद्रवी आदि कहकर कृष्ण की निन्दा किया करते थे। शैवों तथा वैष्णवों का वैमनस्य तो व्यापक था, आये दिन चिमटा-ससा चला करते थे। इसी अज्ञान-जन्य कट्टरता से दुखित होकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने शिव तथा राम में सामंजस्य स्थापित किया और एक दूसरे का उपास्य बनाकर जनता के सम्मुख रक्खा।

रसखान उन कृष्ण-भक्तों में से नहीं थे जो कृष्ण के अतिरिक्त राम, शंकर या अन्य किसी देवी-देवता के नाम से चिढ़ते थे। उनके इष्टदेव श्रीकृष्ण सर्वोपरि अवश्य थे किन्तु साथ ही उन्हें किसी से विरोध न था।

विरोध की बात तो दूर रही, वे अन्य देवी-देवताओं का भी आदर करते थे। यद्यपि कई स्थानों पर उन्होंने 'शंकर से सुर जाहि भजैं' तथा 'ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत' आदि लिखा है किन्तु एक स्थल पर जो उन्होंने कृष्ण और शंकर को अभिन्न माना है। एक ही पद में रूप के आधे अंग में हरि की तथा आधे अंग में शंकर की शोभा वर्णन करने को हरिशंकरी कहते हैं। रसखान ने भी कृष्ण और शंकर को एक समझते हुए यह हरिशंकरी लिखी है—

इक ओर किरीट लसै, दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि ओठन पैं, उत डामर नाद से बाजत री॥
'रसखानि' पितंबर एक कँधा पर, एक बघंबर छाजत री।
अरी देखहु संगम लै बुडकी निकसे यह भेज बिराजत री॥

कृष्ण के साथ में शंकर का वर्णन तो किया ही है स्वतन्त्र भी शंकर जी का बड़ा सुन्दर वर्णन कर रसखान ने शिव-प्रेम अथवा शिव-आदर का परिचय दिया है। वर्णन अत्यन्त सजीव तथा आकर्षक है—

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूली लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा, अँटकी लटकैं, सुभ सीस फनी फहरावत है॥
'रसखानि' जेई चितवै चित दै तिनके दुख दुंद भजावत हैं।
गजखाल कपाल की माला बिसाल सो गाल बजावत आवत हैं॥

त्रिदेवों को, विशेषकर हरि और शंकर को, एक ही कोटि के समझना तथा उन्हें समान आदर देना तो एक सामान्य बात है। रसखान की धार्मिक उदारता का पता इससे भी चल सकता है कि उन्होंने भगवती भागीरथी का वर्णन बड़ी भक्तिपूर्वक किया है। वह सवैया निम्नांकित है—

बैद की औषधि खाइ कछू न करै वह संजम री सुन मोसैं।
तेरोई पानी पियै 'रसखानि' सजीवन जानिल है सुख तोसैं॥
ए री सुधामयी भागीरथी सब पथ्य कुपथ्य बनै तुहि पोसैं
आक धतूरो चबात फिरैं विष खात फिरैं सिव तेरे भरोसैं॥

गंगाजल में इतनी अटल भक्ति और इतना दृढ़ विश्वास उन्हें कैसे हुआ यह वे ही जानें किन्तु इतना सत्य है कि उन्होंने बनावटी नहीं हृदय की सच्ची बात लिखी है। इन्हीं सब कारणों को देखकर कहा जा सकता है कि रसखान में धार्मिक उदारता थी।

८ रसखान की काव्य-भाषा

भाषा की विचार-पद्धति साहित्याचार्यों ने भाषा का विचार स्वतन्त्र रूप में किसी एक स्थल पर नहीं किया। भाषा सम्बन्धी भिन्न-भिन्न अवयवों का विचार भिन्न-भिन्न प्रसंगों के अन्तर्गत किया अतः भाषा-सम्बन्धी विचारणीय बातें पृथक् पृथक् पड़ी हुई हैं। वे भिन्न-भिन्न प्रसंग हैं रीति, गुण, अलंकार तथा ध्वनि। वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली तथा लाटी आदि रीतियों का विवेचन करना भाषा के ही एक अंग पर विचार करना है। प्रसाद, माधुर्य तथा ओज गुण का विचार भी भाषा के ही अन्तर्गत आता है। अलंकारों में शब्दालंकार मात्र भाषा से ही सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि उनमें भाव या विषय का चमत्कार न होकर केवल शाब्दिक चमत्कार रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा-सम्बन्धी बातें अलग-अलग भेदों में बँटी हुई हैं, अतः किसी कवि की भाषा पर विचार करने के लिये हमें उपर्युक्त बातों पर ध्यान देना होगा।

ब्रजभाषा का प्रकृत-गुण रसखान की काव्य-भाषा ब्रज है, जो उस समय काव्य-सिंहासन पर आरूढ़ थी। ब्रज मंडल के कवि तो ब्रजभाषा में कविता करते ही थे, अन्य प्रान्तवासी कवि भी ब्रजभाषा में ही रचना करते

थे। अवधी भाषा के प्रतिनिधि तथा पोषक महाकवि तुलसीदास जी भी ब्रजभाषा मे कविता करने के लोभ को सवरण न कर सके थे। जो पद आज खडी बोली को प्राप्त है, वही पद उस समय ब्रजभाषा को प्राप्त था। अतएव यह देख लेना चाहिए कि उसमे कौन से ऐसे गुण हैं, जिनके कारण वह कवियो को आकर्षित कर सकी। ब्रजभाषा का स्वाभाविक गुण है माधुर्य। भाषा की मधुरता जितनी इस भाषा मे है उतनी किसी मे नही है। ब्रजभाषा के इसी गुण पर रीझकर सम्राट अकबर कुछ दिन वृंदावन मे जाकर रहे थे। और वहा के गोप-गोपिकाओ की सरल तथा मीठी बातें सुनते थे। आज भी जो वृंदावन या उसके आस-पास के गाँवो मे जाता है, वह वहा बोली सुनकर मुग्ध हो जाता है। ब्रजभाषा मे एक विचित्र सरलता, सरसता तथा आकर्षण होता है, एक विचित्र मिठास होती है। इस भाषा का एक विशेष गुण इसकी पाचन-शक्ति भी है। सस्कृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओ के शब्द बडी सरलता से अपने मे मिला लेती है। उस पर भी विशेषता यह है कि वे शब्द ब्रजभाषा के साचे मे ही ढल जाते है। रसखान की भाषा मे भी ऐसे शब्द आये हैं जिनका उल्लेख यथास्थान होगा। एक बात ध्यान देने की और है, वह यह कि ब्रजभाषा मे सस्कृत फारसी के वे ही शब्द स्थान पा सकते है जो सरल हो और जिनका प्रयोग सर्वसाधारण मे होता हो।

> **ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोइ।**
> **मिलै सस्कृत पारस्यौ पै अति प्रगट जु होइ॥**

'अति प्रगट' शब्द से स्पष्ट कर दिया गया है कि सस्कृत-फारसी के सरल शब्द ही ब्रजभाषा मे मिल सकते हैं। ब्रजभाषा के विषय मे इतनी बात कहकर अब हम रसखान की भाषा पर विचार करेंगे।

भाषा-माधुरी ब्रजभाषा के तीन ही कवि ऐसे हैं जिनकी भाषा

परिमार्जित तथा सुव्यवस्थित है, वे कवि है—रसखान, बिहारी तथा घनानन्द। यह जानकर आश्चर्य किया जा सकता है कि ब्रजभाषा के महाकवि सूरदास जी का नाम नहीं आया, किन्तु ध्यान देने की बात है कि सूरदास जी ने जितनी शक्ति भाव-द्योतन की ओर लगाई है, उतनी भाषा-सौष्ठव की ओर नहीं लगाई। निस्सदेह अतर्वृत्तियो को पहचानने की जो सूक्ष्म दृष्टि सूरदास जी के पास थी, वह किसी को नहीं प्राप्त हो सकी, किन्तु यहाँ भाव-पक्ष का विचार न होकर भाषा-पक्ष का विचार हो रहा है और यह सुगमतापूर्वक देखा जा सकता है कि उनकी भाषा मे जितना सौदर्य है उससे कही अधिक सौंदर्य उनके बाद के इन कवियो की भाषा मे है। ब्रजभाषा के अतिम महाकवि बा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने एक स्थान पर कहा है कि यदि ब्रजभाषा का व्याकरण बनाना हो तो रसखान, बिहारी और घनानन्द का अध्ययन करना चाहिए। इन तीनो महाकवियो की भाषा-विशेषता भी पृथक्-पृथक् है। बिहारी की व्यवस्था कुछ कडी तथा भाषा अधिक परमार्जित एव साहित्यिक है। घनानन्द मे भाषा-सौदर्य उनके लाक्षणिक प्रयोगो के कारण आया है। रसखान की न तो व्यवस्था ही कडी है, न भाषा ही उतनी साहित्यिक है तथा न लाक्षणिक प्रयोग ही अधिक हैं उनकी भाषा मे ब्रज की प्रकृत-माधुरी आ गई है। उन दोनों कवियो ने भाषा को कुछ सँवारने का प्रयत्न किया है, किन्तु रसखान ने ठीक उसका स्वाभाविक रूप लिया है। रसखान को कृत्रिम माधुर्य उत्पन्न करने का प्रयास नहीं करना पडा, बोलचाल के ही शब्दो को ग्रहण करने के कारण उनकी भाषा स्वत मधुर हो गई है।

भाषा-प्रवाह रसखान की भाषा का दूसरा प्रधान गुण भाषा-प्रवाह है। बोलचाल की भाषा जब कुछ परिष्कृत रूप मे आती है तब उसमे एक प्रवाह आ जाता है। इनकी भाषा मे प्रवाह आने के कुछ और भी

कारण है। रसखान ने घनानन्द की भाँति अन्तर्वृत्तियों की छानबीन नहीं की, प्रत्युत रूप का बाह्य वर्णन ही किया है, अतः सीधा विषय होने के कारण भी भाषा में द्रुत प्रवाह आ गया है। बिना अर्थ पर ध्यान दिये इनके सवैया को पढ़ने मात्र में एक प्रकार का आनन्द मिलता है। पढ़ने में किसी प्रकार की रुकावट नहीं मालूम होती, परवर्ती शब्द स्वतः उच्चरित होते चलते हैं। रसखान के भाषा-प्रवाह का तीसरा कारण है उनका छन्द-चुनाव। अधिकतर उन्होंने मत्तगयंद सवैये लिखे हैं। इस छन्द का ऐसा नाम कदाचित् उसकी सुंदर गति के ही कारण पड़ा है। एक तो हाथी की चाल यों ही मस्तानी होती है, उस पर मदमस्त हाथी की चाल का क्या पूछना? रसखान के सवैयों की मदमत्त गजगामिनी गति है। रसखान ने मनहरण कवित्त भी लिखे हैं। नाम ही उसका मनहरण है। यदि मनहरण छंद द्वारा मनहरण भाषा (व्रज) में मनहरण विषय (कृष्ण-लीला) वर्णित किया जाय तो क्या आश्चर्य है यदि वह सब का मन हरण करले। रसखान के सवैयों का प्रवाह देखिए—

> भौंह भरी बरुनी सुथरी अतिसय अधरानि रँगी रँग राती।
> कुंडल लोल कपोल महाछवि कुंजनि ते निकस्यो मुसकातो॥
> 'रसखानि' लखे मग छूटि गयो डग भूलि गई तन की सुधि माती।
> फूटि गयो सिर को दधि भाजन टूटिगो नैननि लाज को नातो॥

एक सवैया और देखिए—

> आयो हुतो नियरे 'रसखानि' कहा कहूँ तू न गई वह ठैया।
> या ब्रज की बनिता जिहिं देखिकै वारहिं प्रानन लेहिं बलैया॥
> कोऊ न काहू की कानि करै कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया।
> गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥

उदाहरणस्वरूप दो सवैये पर्याप्त हैं क्योंकि जब इनकी समस्त रचना

मे ऐसा ही प्रवाह है तो कहा तक उदाहरण दिये जा सकते है। भाषा मे प्रवाह आने का कारण शब्दो का चलतापन है, यह कहा जा चुका है। 'वे लाल लसे पग पाँवरिया' 'दै गयो भाव को भाँवरिया' मे पौरी भौरी के स्थान पर 'पाँवरिया' 'भाँवरिया' के आने से कितनी सुन्दरता और सरसता आ गई है।

अरबी-फारसी आदि उन शब्दो पर विचार कर लेना चाहिए जो अन्य भाषाओ के है, और जो ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार रसखान की रचना मे भी आ गये है। कुछ शब्द तो रसखान ने ज्यो के त्यो ले लिये है, किंतु कुछ को ब्रज का जामा पहनाकर उनका विदेशीपन बहुत कुछ निकाल दिया है। पहले अरबी-फारसी के शब्दो को लीजिए—

प्रेम-रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।

यह 'अजीब' शब्द को अजूबो करके ब्रज की संपत्ति बनाने का प्रयत्न सफल हो रहा है। 'ताहि मरो लखि लाख करो इंह पारख पतिव्रत ताख धरो जू', इस पंक्ति मे अरबी के 'ताक' को ताख कर देने मे दो लक्ष्यो की पूर्ति हुई है। एक तो लाख, पारख के साथ ताख मे अनुप्रास की सुन्दरता स्वतः आ गई, दूसरे ताख शब्द कुछ अपना-सा जान पड़ने लगा।

कहा 'रसखानि' सुख संपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।

रसखान 'शुमार' का सुमार करके ही ग्रहण कर सके है। इनके अतिरिक्त मजा, तीर, आवाज, महबूब आदि शुद्ध रूप में ले आये है किंतु इतनी रचना मे कुछ शब्दो का आ जाना साधारण बात है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि रसखान यह शब्द अधिक न आने देने के लिये सतर्क थे।

अवधी रसखान की भाषा मे कुछ अवधी भाषा के भी शब्द पाये जाते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि अवधीभाषा के कवि का ब्रज के शब्दो से और ब्रजभाषा के कवि का अवधी के शब्दो मे बचना कठिन है। झाँकन देत नही हैं दुवारो' तथा 'क्यो अलि भेटिए प्रान पियारो मे 'दुवारो' तथा 'पियारो अवधी के रूप हैं, ब्रजभाषा मे इनके रूप 'द्वारो' तथा 'प्यारो' होगे, जैसा कि रसखान ने एक अन्य स्थान पर प्रयोग किया है 'न तो पीने हलाहल नन्द के द्वारे'। इसी प्रकार 'ताहि अहीर की छोहरिया' तथा 'नहि वारत प्रान अवार लगावैं' मे ताहि' तथा 'अवार' अवधी के शब्द हैं। इनके अतिरिक्त अस, केरी, आहि तथा अहै भी अवधी भाषा के ही शब्द हैं जो रसखान की रचना मे प्रयुक्त हुए हैं।

अपभ्रंश ब्रजभाषा को शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी समझना चाहिए। इसमे अब तक कुछ प्राचीन शब्द चले आते है, शब्द ही नही, व्याकरण के रूप भी वर्तमान है। रसखान की कविता मे भी अपभ्रंश (पुरानी हिंदी) के शब्द तथा रूप प्रयुक्त है। 'गंगाजी मे न्हाइ मुक्ताहल हू लुटाय' मे 'मुक्ताहल' शब्द पुरानी हिंदी का ही है, जो ब्रज कवियो द्वारा प्रयुक्त होता हुआ रत्नाकर' जी तक की कविता मे आया है। 'आज महूँ दवि बेचन जात ही' मे 'ही' अपभ्रंश का शब्द है जिसका अर्थ है 'थी'। अपभ्रंश मे मध्यग 'त' का लोप हो जाता है, तभी थ मे मे 'त' का लोप हो गया और प्राणध्वनि केवल 'ह' रह गई। 'वेनु बजा-वत गोधन गावत ग्वालन के सँग गोमधि आयो' मे व्याकरण का प्राचीन रूप दिखाई पड़ता है। अपभ्रंश मे सप्तमी का चिह्न इ है, वही इ व मे लगी हुई है जिसका अर्थ है गायो के मध्य मे। रसखान दो-एक नामधातुओ का भी प्रयोग करके अच्छा सौंदर्य ले आये हैं, जैसे 'आँखि मेरी अँसुवानी रहैं' मे अश्रुपूर्ण आँखो के लिये 'अँसुवानी' शब्द का प्रयोग बड़ा सुन्दर हुआ

है। नामधातु का ऐसा प्रयोग ब्रज आदि पुरानी भाषाओ के अतिरिक्त अन्यत्र कहा ? खडीबोली मे ऐसे प्रयोग किये ही नही जा सकते।

राजस्थानी रसखान की रचना मे एक राजस्थानी शब्द भी पडा हुआ है। 'तू गरवाइ कहा झगरै रसखानि तेरे बस बावरी होसै'। यह 'होसै' राजस्थानी शब्द 'होसी' का ही रूप है जिसका अर्थ है 'होगा'। रसखान इस शब्द को इसलिये नही लाये कि राजस्थानी का भी एक शब्द आ जाय, वरन उन्हे अपना काम निकालना था। इसके बाद की पक्तियो मे कोसै-रोसै आदि है, इसीलिये बिना किसी हिचक के आपने होसै रख दिया। यह पहले कहा जा चुका है कि इन्होने भाषा को सुन्दर बनाने का कोई विशेष प्रयत्न नही किया, इनकी भाषा मे जो भी सौदर्य आया है, वह प्रकृत-गुण होकर आया है।

परपरागत-शब्द कुछ ऐसे शब्द होते है जो काव्य-परपरागत होते हैं। जनता के बीच उनका व्यवहार नही होता, किंतु फिर भी कवियो द्वारा वे काव्य मे प्रयुक्त होते हुए बराबर चले चलते हैं। ब्रजभाषा मे कुछ ऐसे ही शब्द है। इन शब्दो को वही कवि प्रयोग मे ला सकता है, अथवा वही पाठक या श्रोता समझ सकता है, जो ब्रजभाषा की परपरा से परिचित होगा। रसखान की भाषा मे भी कुछ ऐसे शब्द मिलते है। 'छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं' 'छछिया' ब्रजभाषा का विशेष शब्द है। इसी प्रकार 'वह गोधन गावत' तथा सोई है रास मैं नैसुक नाचि कै, मे 'गोधन' तथा 'नैसुक' परपरागत शब्द हैं। इससे पता चलता है कि रसखान ब्रजभाषा की परपरा से पूर्ण परिचित थे।

मुहावरों का प्रयोग मुहावरो के प्रयोग से भाषा मे एक प्रकार की शक्ति आ जाती है। समर्थ कवि ही मुहावरो का उपयुक्त प्रयोग कर सकते है। मुहावरो मे भी भेद होता है, कुछ लोक-प्रचलित रहते हैं तथा कुछ काव्य-परपरा मे ही सीमित रहते है। केवल काव्य-क्षेत्र के मुहावरो मे

भाषा में उतना प्रभाव नहीं आता जितना कि लोक-प्रचलित मुहावरों के प्रयोग में आता है। रसखान ने उन्हीं मुहावरों का प्रयोग किया है जो जन-समाज में प्रसिद्ध हैं, अतः इनके कारण रसखान की भाषा की प्रभावोत्पादनशक्ति कुछ बढ़ गई है। उदाहरण के लिये देखिए 'यह रसखानि दिना द्वै में बात फैलि जहै कहाँ लौं सयानी चंदा हाथन छिपाइबो' में 'हाथों में चाँद छिपाना बहुत प्रसिद्ध मुहावरा है। पाले परी मैं अकेली लली' में 'पाले पड़ना' मुहावरा गोपी की दीनावस्था को और भी बढ़ाकर काव्य-रस को प्रगाढ़ कर देता है। 'आँख सौं आँख लड़ी जबही, तब से ये रहे अँसुआ रँग भीनी' में 'आँख से आँख लड़ना' मुहावरा कौन न जानता होगा। 'नेम कहा जब प्रेम कियौ, अब नाचिए सोई जो नाच नचावै' में नाच नचाना मुहावरे से ब्रजबालाओं की दयनीय दशा प्रकट हो रही है। 'या ते कहूँ सिख मान भटू, यह हेरनि तेरे ही पैंड परैगी' में 'पैंड परना' (पीछे पड़ना) मुहावरे से सखी की शिक्षा में और भी बल आ गया है। इस प्रकार रसखान ने मुहावरों के प्रयोग से भाषा को बलवती बनाया है किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि मुहावरों का प्रयोग उनका प्रधान लक्ष्य नहीं था, केवल मुहावरा लाने के लिये ही उन्होंने पूरी सवैया नहीं गढ़ी, वरन् विषयानुसार मुहावरे बिना अधिक प्रयत्न के आ गये हैं। कवि कलम को कपोल पर रखकर मुहावरा सोचने में तन्मय नहीं हुआ, यह तो उसकी क्षमता और तीव्र बुद्धि का परिणाम है जो मुहावरे यथास्थान स्वयं उसकी कलम से लिख गये या मुँह से निकल गये।

यह कहा जा चुका है कि रसखान की भाषा में लाक्षणिक प्रयोग नहीं हैं, क्योंकि उन्हें सीधे ढंग से बात कहना अभीष्ट था, फिर भी सफल कवि के नाते दो-एक लाक्षणिक प्रयोग स्वतः आ गये हैं, उनका दिग्दर्शन करा देना अनुचित न होगा।

तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी।

यहाँ 'लाज बिदा करना' लाक्षणिक प्रयोग है। इसी प्रकार और भी दो-एक प्रयोग मिल सकते हैं।

शब्द-भंग कुछ ऐसे भी कवि होते हैं जो जान बूझकर शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा करते हैं और अपनी समझ से सुन्दरता लाने पर भी उनकी सुन्दरता बनने के स्थान पर बिगड़ जाती है। किंतु सभी कवि ऐसे नहीं होते, कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके शब्द-भंग में ही एक विशेष चमत्कार आ जाता है। रसखान भी ऐसे ही कवि थे। उन्होंने आवश्यकतानुसार शब्दों को अपने मन का बना लिया है, और ऐसा करने में उनकी भाषा में लालित्य ही आया है कुछ कर्कशपन नहीं आने पाया।

कोऊ कहै छरी कोऊ भौन परी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की।

यहाँ छली' के स्थान पर 'छरी' कर देने से एक मिठास आ गई है, साथ ही परी, डरी, मरी और हरी के साथ तुक भी बैठ गया है।

टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै धन दैहौं।

यहाँ पर भी छल्ला' के लिये 'छरा' में वही सादगी तथा भोलापन भरा हुआ है। मोल छला के लला न बिकैहौं' में 'लला' के रहने के कारण 'छला' ही रक्खा, अर्थात् जहाँ जैसी आवश्यकता देखी वैसा रूप रक्खा। केवल दो एक स्थल ही ऐसे हैं जहाँ की तोड़-मरोड़ खटकती है, जैसे 'लाल रिझावन को फल पेनी' में 'पेनी' शब्द पानी के लिये है जो केती-देती के जोड़ में आया है, किन्तु इसमें न तो सुन्दरता आई है और न भाव ही स्पष्ट हुआ है।

स्वाभाविक चमत्कार विषय के प्रतिपादन में रसखान ने अत्यन्त सीधा मार्ग ग्रहण किया है। उनके भाव अत्यंत स्पष्ट हैं। चमत्कार की ओर

उनकी रुचि नही थी, अलंकारो की ओर उनका ध्यान गया ही नहीं। वे स्वय भावमग्न होकर दूसरो को भी भावमग्न करना चाहते थे, यही कारण है कि भाषा-चमत्कार के चक्कर मे न तो वे ही पडे और न दूसरा को डाला। यह नहीं कहा जा सकता कि काव्य के इस अंग का उन्हे ज्ञान ही न था। वे प्रतिभाशाली कवियो मे स थे। अन्य सतो या भक्तो की भाति बिना योग्यता तथा अध्ययन के उन्होने कवित्त करना आरभ नही किया था। रसखान ने कठिन परिश्रम करके तत्कालीन तथा प्राचीन साहित्य का अध्ययन किया था भाषा तथा भाव सबधी सभी बातो मे परिचित थे। उनमे इतनी क्षमता थी कि भाषा को अलकृत कर सकते थे, किंतु उन्हे यह अभीष्ट न था। अत उनकी भाषा न अलकारो अथवा चमत्कारपूर्ण स्थलो की भरमार नहीं है। अलकारो की ओर ध्यान न देते हुए भी उनकी भाषा मे स्वत कुछ अलकार आ गये है जो भाषा का सजाने के साथ-साथ रसोद्रेक मे भी सहायक हुए हैं। इन अलकारो मे अनुप्रास मुख्य है। यो तो रूपक, यमक, उपमा सभी के एक-एक दो-दो उदाहरण मिल जायगे, किंतु अनुप्रास प्राय प्रत्येक छद मे है, जिससे भाषा मे अद्भुत सौंदर्य तथा प्रवाह आ गया है। स्थान-स्थान पर अनुप्रास होने पर भी यह नही भासित होता कि भूषण कवि की भाँति वे बलात् लाकर बैठाये गये है। अलकारो का क्रम से उल्लेख किया जा रहा है।

अनुप्रास - 'दोऊ परे पैया, दोऊ लेत है बलैया, इन्हें भूलि गई गैया, उन्हे गागर उठाइबो इसमे 'पैया 'बलैया' और 'गैया' का कितना स्वाभाविक अनुप्रास है। 'रस बरसावै तन तपन बुझावै नैन प्रानन रिझावै वह आवै रसखानि री' यहाँ 'बरसावै' 'बुझावै,' 'रिझावै' तथा 'आवै' के कारण भाषा मे एक प्रवाह आ गया है, जो कहकर ही प्रकट किया जा सकता है, लिखकर नही। 'कहा कहौ आली खाली देत सब ठाली पर मेरे बनमाली को न काली तें छुडावही' क्या कहा जा सकता है कि यह अनुप्रास प्रयत्न-

साध्य है ? वही स्वाभाविकता इस अनुप्रास में भी है 'गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया'। निम्नांकित सवैये में कितना सुन्दर अनुप्रास है फिर भी भाषा-चमत्कार की ओर ध्यान न जाकर भाव की ओर ही जाता है, इसका कारण यही है कि शब्द ढूँढ़-ढूँढ़कर नहीं बैठाये गये, स्वतः आते गये हैं—

नैन लख्यो जब कुंजन तें बनिकैं निकस्यो मटक्यो मटक्यो री।
सोहत कैसे हरा टटको सिर तैसो किरीट लसैं लटक्यो री॥
को 'रसखानि' रहै अँटक्यो हटक्यो ब्रज लोग फिरैं भटक्यो री।
रूप अनूपम वा नटको हियरे अँटक्यो अँटक्यो अँटक्यो री॥

इस पंक्ति को देखिए 'नैननि सैनति बैननि में नाहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री' 'नैननि' 'सैननि' और बैननि' के कारण भाषा में लोच तथा कोमलता आ गई है। 'दै चित ताके न रंग रच्यो जु रह्यो रचि राधिका रानी के रंगहिं' इसमें स्पष्ट लक्षित होता है कि 'र' से आरंभ होने वाले शब्दों को लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, आवश्यकता ही उन्हीं की थी। अब यदि संयोग से अनुप्रास हो गया तो कवि का प्रयत्न नहीं किन्तु कवि की सरस तथा अतुल शब्दावली की बहुलता कही जायगी।

यमक दो-एक स्थलों पर यमक भी आ गया है उसे भी देख लेना चाहिए। 'भैया की सौं सोच कछू मटकी उतारे का न गोरस के ढारे को न चीर चीर डारे को' यहाँ पहले 'चीर' का अर्थ साड़ी तथा दूसरे 'चीर' का अर्थ फाड़ना है। इसी प्रकार 'या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरान धरौगी' में भी मध्यम श्रेणी का यमक है क्योंकि दूसरे अधरान में 'अधरा' और 'न' अलग अलग शब्द हैं। पहला अधरान अधर (होंठ) का बहुवचन और दूसरे अधरान का अर्थ होठों में न (धरूँगी) है। अलंकारों की ओर रुचि न होने के कारण अधिक उदाहरण नहीं मिल सकते।

श्लेष अपने नाम का रसखान ने आवश्यकतावश श्लेष की भाँति प्रयोग किया है, जो बहुत जँचता है। उसी 'रसखान' से अपने नाम का भी बोध कराया है और संपूर्ण रसों की खान भगवान श्रीकृष्ण की ओर भी संकेत है। ऐसे-ऐसे कई स्थल हैं, उनमें से एक का ही उल्लेख करना ठीक होगा। 'हाँसी में हार रह्यौ रसखानि जू जो कहुँ नेक तगा टुटि जैहै' यहाँ 'रसखानि जू' से कवि का नाम भी लक्षित होता है और गोपियों के लिये कृष्ण को संबोधन का काम भी दे रहा है। घनानंद ने भी 'सुजान' शब्द को श्लेष बनाकर प्रयुक्त किया है। रसखानि शब्द के अतिरिक्त एक स्थल पर रसखान ने शुद्ध श्लेष का प्रयोग किया है और बड़ी सुन्दरता के साथ किया है।

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटाँक नहिं देत।

इसमें 'मन' शब्द के दो अर्थ हैं, एक तौलने वाला मन और दूसरा चित्त।

रूपक रूपक एक ऐसा अलंकार है जो अनायास ही नहीं आ जाता, इसके लिये कवि को इसी के उद्देश्य से प्रयत्न करना पड़ता है। यही कारण है कि रसखान की रचना में दो एक रूपक ही मिलते हैं। उनका एक रूपक मिलता है और वह भी सांगरूपक नहीं है। संभव है रसखान ने इसके लिये प्रयत्न किया हो या यह भी स्वतः आ गया हो। 'खंजन नैन फँदे पिंजरा छवि नाहिं रहैं थिर कैसे हू माई' इसमें खंजन रूपी नैनों को छवि-रूपी पिंजड़े में फँसाकर रूपक लाया गया है।

उपमा यों तो दो-एक उपमाएँ रसखान की रचना में खोजने में मिल जायेंगी किंतु इस ओर इनका ध्यान न था। अतः अधिक उपमाएँ नहीं मिलेंगी। जो उपमाएँ आई भी हैं वे बड़ी सटीक और उपयुक्त हैं, जैसे 'द्विरद को रद ऐंचि लियो रसखानि हरै मन आइ विचार-सी। लागी कुठौर लई लखि तोरि कलंक तमाल ते कीरति डार-सी॥' इसमें हाथी के दाँतो

की उपमा कीर्ति-रूपी हार से दी गई है। कीर्ति या यश का रंग उज्ज्वल होता है। कलंक का स्वरूप काला है और हाथी का रंग भी काला होता है।

पुनरुक्ति-प्रकाश — कोई एक शब्द या वाक्यांश जब दो या तीन बार एक ही अर्थ में प्रयुक्त होता है तो भाषा में बल और भाव में तीव्रता आती है। दो बार से अधिक बल तीन बार में आता है क्योंकि यों भी लोक में तिबाचा का बड़ा प्रभाव कहा गया है। जब किसी बात की दृढ़ता या निश्चयात्मकता प्रकट करनी होती है तो क्रिया को तीन बार कहते हैं, जैसे एक घुमक्कड़, हठी और दुलारा लड़का पिता से कहता है 'मैं बंबई घूमने जाऊँगा, जाऊँगा, जाऊँगा।' 'जाऊँगा' की प्रत्येक पुनरुक्ति पर उसके विचार की दृढ़ता बढ़ती जाती है। यह तो ऐसा उदाहरण हुआ जिससे लड़के पर क्रोध आ सकता है किंतु जब यही तिबाचा किसी उच्च भाव से कविता में प्रयुक्त होता है तो उसके कारण एक अनोखा सौंदर्य आ जाता है, इस चमत्कार को आचार्यों ने पुनरुक्ति-प्रकाश नामक अलंकार कहा है। कहीं-कहीं तो यह भद्दा लगने लगता है, इसका कारण कवि की असावधानी तथा अयोग्यता है। रसखान ने इसका बड़ा मार्मिक, आकर्षक तथा प्रभावपूर्ण प्रयोग किया है।

टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै।
माई री वा मुख की मुसकानि सम्हारि न जैहै न जैहै न जैहै॥

'न जैहै' की पुनरुक्ति से भाव में कितनी सबलता तथा मुसकान देखकर अपने को सँभालने में गोपी की असमर्थता प्रकट हो रही है। इसी प्रकार एक स्थान पर और देखिए—

चहुँ ओर बबा की सौं सोर सुनै मन मेरेऊ आवत रीस कसै।
पै कहा करौं वा 'रसखानि' बिलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै॥

सिंहावलोकन जब छंद के पहले चरण का अंतिम शब्द दूसरे चरण का आरम्भिक शब्द हो जाता है और फिर दूसरे चरण का अंतिम शब्द तीसरे चरण का आरम्भिक शब्द हो जाता है और यही सबंध तीसरे-चौथे चरण में भी रहता है तब वह सिंहावलोकन अलंकार कहलाता है। इसके कारण भाषा में बहुत थोड़ा सौंदर्य आने के अतिरिक्त भाव-सौंदर्य में कुछ भी वृद्धि नहीं होती। ऐसा एक ही छंद है जहाँ यह अलंकार आया है—

बजी है बजी 'रसखानि' बजी सुनि कै अब गोप कुमारि न जीहै।
न जीहै कदाचित कामिनि कोऊ जुकान परी वहतान कुँ पीहै॥
कुँ पीहै बचाव को कौन उपाय तियान पै मैन ने सैंज सजी है।
सजी है तो मेरो कहा बस है, जब बैरिन बाँसुरी फेरि बजी है॥

उत्प्रेक्षा रसखान की रचना में दो-एक उत्प्रेक्षाएं भी अपनी छटा दिखा रही हैं। यदि उत्प्रेक्षा उपयुक्त हो तो भाव और भी प्रभावशाली हो जाता है। रसखान की उत्प्रेक्षा देखिए—

यो जग जोति उठी तन की उसकाइ दई मनो बाती दिया की

मंद होते हुए दीपक की बत्ती उसका देने से जिस प्रकार प्रकाश बढ़ जाता है उसी प्रकार कृष्ण का आना सुनकर मूर्छित गोपी चैतन्य हो गई। इस उत्प्रेक्षा के कारण भाव स्पष्ट तथा सरस हो गया है।

संदेह संदेह अलंकार में भी एक विचित्र भोलापन छिपा रहता है। जब यह भोलापन (Innocence) शृंगाररस में नायिका की ओर से प्रकट किया जाता है तो इसमें और भी रस तथा प्रभावोत्पादकता आ जाती है। रसखान ने बड़ी योग्यता के साथ इसका उपयोग किया है। इस पंक्ति को देखिए—

जानिए न आली यह छोहरा जसोमनि को।
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो।

बेचारी गोपिका परेशान है, उसे यह पता नहीं लगता कि वह बाँसुरी की ध्वनि सुनने के कारण मूर्छित हुई जा रही है कि विष के प्रभाव से यह हाल है। उसे संदेह हो रहा है कि कृष्ण ने बंशी नहीं बजाई किंतु विष फैलाया है।

होरी भई कि हरी भये लाल कै लाल गुलाल पगी ब्रजबाला।

यहाँ संदेह अलंकार के कारण कृष्ण तथा गोपी के रंग से रूपमय होने का पूर्ण दृश्य नेत्रों में खिंच जाता है।

इतने विवेचन से यह विदित हुआ कि तीन-चार शब्दालंकार और इतने ही अर्थालंकारों में से प्रत्येक के दो-दो तीन-तीन स्थलों को छोड़कर और न तो अन्य अलंकार रसखान की रचना में हैं और न इन्हीं का अधिकता से प्रयोग हुआ है। इनमें से अधिकांश तो बिना प्रयास स्वतः आ गये हैं। इन अलंकारों को देखकर कहा जा सकता है कि ये अलंकार-शास्त्र से परिचित थे किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। 'शिवसिंहसरोज' में इनका एक छंद है जो वर्तमान किसी संग्रह में नहीं है। उसको देखने से विदित होता है कि कवि ने कठिन परिश्रम करके इन शब्दों को लाकर रक्खा है और इसी कारण उसमें भाषा की थोड़ी विशेषता के अतिरिक्त भाव-द्योतन की कोई शक्ति नहीं है। वह छंद है—

डहडही मोरी मंजु डार सहकार की पै
चहचही चुहिल चहूँकित अलीन की।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की॥

तहलही करि 'रसखानि' के मिलन हेत
बहबही बानि तजि मानस मलीन की।
महमही मद मद मारुत मिलन तैसी
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की।।

इसमें डहडही, महमही, चहचही तथा अनुप्रास की विशेषता के अतिरिक्त और क्या है ? यहाँ अनुप्रास भी उतना अच्छा नहीं लगता जैसा कि इनकी अन्य रचनाओं में अच्छा लगता है। यह तो मस्तिष्क का व्यायाम मालूम होता है। संभव है यह कवित्त रसखान का न हो और यदि हो भी तो दुख का विषय है कि इसके अतिरिक्त उनकी और कोई रचना नहीं है। इस छंद में प्रकृति-वर्णन है और वह भी कोई अच्छा वर्णन नहीं है। रसखान ने केवल प्रकृति-वर्णन के हेतु कलम कभी नहीं उठाई। कृष्ण की किसी लीला-वर्णन के साथ प्रकृति का भी कुछ वर्णन कर दिया हो तो कर दिया हो किन्तु शुद्ध प्रकृति-वर्णन कहीं नहीं किया, इससे और भी संदेह होता है कि यह रचना रसखान की नहीं है।

भाषा की सुगमता यदि भाषा की क्लिष्टता तथा सुगमता पर विचार किया जाय तो रसखान की भाषा अत्यंत सुगम दिखाई देती है। उन्होंने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। सर्वसाधारण में प्रतिदिन बोले जाने वाले शब्दों को लेकर ही रसखान ने रचना की है। उन्होंने साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा को मिलाने का प्रयत्न किया है जो प्रयत्न आजकल कुछ लोगों के द्वारा हो रहा है। इनकी ठेठ भाषा को देखकर यह न समझना चाहिए कि इन्हें शुद्ध तत्सम शब्दों का ज्ञान ही न था। इनकी रची हुई 'प्रेमवाटिका' की भाषा को देखने से पता चलता है कि इन्हें संस्कृत का भी ज्ञान था। 'प्रेमवाटिका' के दोहों की भाषा अधिक परिमार्जित एवं तत्समबहुला है। निम्नांकित दोहों की भाषा पर ध्यान दीजिए—

काम क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य॥

*

मित्र कलत्र सुबन्धु सुत इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इन मे नहीं, अकथ कथा सविसेह॥

इनकी रचना मे निषेध, निमित्त श्रुति स्मृति, कामना, दम्पति, विवेक, शुद्धाशुद्ध, नरनि-नवज्ञा तथा पुरदन्त इसमे शब्द प्रयुक्त हुए है। इससे विदित होता है कि भाषा की अच्छी योग्यता रखते हुए भी रसखान ने बोलचाल की सरल भाषा को अपनाया है। इनकी रचना मे समास-पदावली भी अधिक नही है अत इनकी रीति वैदर्भी कही जा सकती है।

९. हिंदी साहित्य में रसखान का स्थान

ख्याति की दृष्टि से कई प्रकार के कवि होते है। एक तो वे जिनकी कविता उन्ही तक रहती है, दूसरे वे जिनकी कविता उनकी गोष्ठी तक रहती है तीसरे प्रकार के कवियो की कविता ग्राम या नगर तक और चौथे प्रकार के कवियो की कविता देशव्यापिनी होती है। सम्मान-प्राप्ति की दृष्टि से भी तीन प्रकार के कवि होते हैं। एक तो वे जिनका मान केवल पडितो मे होता है, जनता मे उनका कोई सबध नही रहता, जैसे महाकवि केशवदासजी। दूसरे वे जिनका मान जनता मे ही अधिक होता है, पडित-समाज उन्हे कोई महत्त्व नही देता, फिर भी सामान्य जनता पर उनका प्रभाव रहता है तथा उनके वचन या पद लोगो के मुह मे रहते हैं जैसे कबीरदास नानक आदि। तीसरे प्रकार के कवि वे है जो पडितजन और सामान्य जनता दोनो के द्वारा प्रतिष्ठित होते है, जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी। इन तीसरे प्रकार के कवियो मे यह आवश्यक

नही है कि उनमे पाडित्य या चमत्कार हो, किंतु एक ऐसी बात होनी चाहिए जिसमे पडित-मर्मज्ञ भी प्रभावित हो। वह बात है भावो की पूर्ण व्यजना। यही बात रसखान मे पूर्णतया पाई जाती है, इसी से उनमे कोई विशेष चमत्कार न रहने पर भी उनका आदर पडितजन और साधारण जन दोनो प्रकार के लोगो मे हुआ। यह बात नही है कि रसखान मे प्रतिभा या क्षमता नही थी, वरन् पूर्ण पारंगत होते हुए भी उन्होने सरलता का मार्ग ग्रहण किया था। वे बनावटी शोभा के पक्षपाती नही थे, क्योकि कृत्रिम शोभा तो कभी न कभी नष्ट भी हो सकती है, किंतु स्वाभाविक शोभा सदा ज्यो की त्यो रहने वाली है। द्वार पर या द्वारपथ पर जो हरे-हरे वृक्ष लाकर खडे किये जाते है और पत्तो की सजावट होती है वह तो दो-एक दिन मे सूखकर कुरूपता को प्राप्त हो जाती है किंतु उसके पास मे लगे हुए छोटे-मोटे पौधे या हरी-हरी कोमल घास ज्यो की त्यो सुशोभित रहती है। इसी प्रकार जो काव्य बनावटी सजावट से पूर्ण रहता है वह एक न एक दिन महत्त्वहीन तथा सौदर्यहीन हो जाता है, किंतु जो काव्य सहज स्वाभाविक सुदरता लिये रहता है वह नित्य महत्त्वपूर्ण तथा सुन्दर रहता है। रसखान इसी प्रकार के कवि थे, उनकी रचना बलात्कृत या परिश्रम-साध्य नही विदित होती, वरन् स्वाभाविक रूप मे हृदय-स्रोत से निर्झरित-सी लगती है। इसमे सदेह नही कि ऐसे कवि सभी भाषाओ मे थोडे होते हैं। बिरले ही ऐसे कवि होते है जो पडितजन और सामान्य जनता दोनो से आदर प्राप्त कर सके, क्योकि इसके लिये विशेष व्यक्तित्व की आवश्यकता होती हैं।

रसखान के कुछ ही पहले नरोत्तमदास जी हुए हैं। 'शिवसिह-सरोज' में उनका जन्म-सवत् १६०२ दिया हुआ है। ये दो कवि अपने ढग के निराले हैं। रसखान और नरोत्तमदास मे एक ही प्रकार का कवित्व पाया जाता है। यद्यपि नरोत्तमदास ने प्रबध-काव्य लिखा है फिर भी

काव्यगत विशेषताएं, भाषा की सफाई, प्रवाह और कवित्त-सवैयों की परिपाटी में दोनों में काफी समानता है। नरोत्तमदास के अतिरिक्त और एक भी कवि ऐसा नहीं है जिसे रसखान की श्रेणी में रख सकें। कवि-शिरोमणि तुलसीदास तथा सूरदास में फिर भी कुछ न कुछ चमत्कार आ गया है, क्योंकि वे सभी श्रेणियों के लोगों को प्रसन्न रखना चाहते थे, उन्हें आशंका थी कि चमत्कारवादी अपने लिये कुछ मसाला न पाकर कहीं नाक-भौं न सिकोड़ने लगें। रसखान को इस बात की परवाह न थी, उनका लक्ष्य सब को प्रसन्न करना न था, किसी दूसरी विशेषता के कारण रसखान के प्रयत्न न करने पर भी यदि सभी प्रसन्न हो जायँ तो बात ही दूसरी है।

एक दृष्टि से हिंदी साहित्य में रसखान का स्थान विशेष महत्त्व का है और वह दृष्टि है विस्मृतप्राय काव्य-परम्परागत रचनाशैली को नवजीवन देना। ब्रह्म और भाटों की कवित्त-सवैया वाली जो परंपरा आदिकाल से चली आती थी वह भक्तिकाल में आकर लोप-सी हुई जा रही थी। रामभक्ति-शाखा के अंतर्गत तो तुलसीदास जी ने कवितावली जैसा ग्रन्थ लिखा भी, किंतु कृष्ण भक्ति शाखा में गीत तथा पदों का ही अधिक प्रचार रहा। सभी कवि गीत तथा पद बनाने लगे थे। ऐसे समय में जब कि सारा कृष्ण-काव्य गीतों में प्रस्तुत हो रहा था और पर्याप्त मात्रा में हो चुका था, रसखान ने कवित्त-सवैयों में अपना कृष्ण प्रेम व्यक्त किया। प्रचलित मार्ग को छोड़कर पीछे छूटे हुए मार्ग को ग्रहण करना उनकी स्वच्छंदता का द्योतक है। सूरदास के पदों को देखकर एक प्रकार की धारणा सी बन चली थी कि रूप-माधुर्य लीलाओं का वर्णन केवल पदों के द्वारा ही उचित रूप से हो सकता है किंतु रसखान ने दिखा दिया कि कवित्त-सवैया में भी वही छटा, वही रस और वही सुघराई आ सकती है जो पदों के द्वारा आती है। इनके सवैयों में लालित्य की कमी नहीं है। कहीं-कहीं तो यह कहना पड़ता है कि सवैया में

व्यक्त होने के कारण ही इस भाव का पूर्ण साधारणीकरण हो सका है, पद ने होता तो वह बात न आती। इन्ही के द्वारा कवित्त-सवैयो की पुनरुद्धार की हुई परिपाटी पर आगे घनानन्द तथा पद्माकर आदि श्रेष्ठ कवि चले, जिन्होने कवित्त-सवैयो की ऐसी धाक जमा दी कि अब भी कवित्त-सवैयो मे ही समस्यापूर्ति करने वालो की कमी नही रहती।

रसखान की भक्ति भी एक विशेष प्रकार की है। इनकी भक्ति-भावना और अन्य भक्त-कवियो की भक्ति-भावना मे अतर है। अन्य भक्त-कवि ब्रह्म की महत्ता तथा अपनी लघुता का वर्णन करने वाले थे, जैसे 'हौ प्रभु सब पतितन को टीको' अथवा 'मोसम कौन कुटिल मति कामी' आदि। सिद्धात की दृष्टि से सबने अपने को पापी तथा प्रभु को पतित-पावन कहकर अपने उद्धार की प्रार्थना की है, किंतु काव्यपद्धति के भीतर इस कथन को रमणीयता प्रतिपादन करने का प्रयत्न किसी ने नही किया। इस प्रकार का कथन भक्तो के बीच परपरागत चला आता हुआ मालूम होता है। किंतु रसखान ने इस कथन को केवल सिद्धात की दृष्टि से न कहकर उसमे एक रमणीयता उत्पन्न कर दी है। वे बिल्कुल कृष्णमय होना चाहते थे, इसका उल्लेख इनकी भक्ति-भावना के प्रसग मे विस्तार से किया जा चुका है। उसी का यहा पुन उल्लेख इस अभिप्राय से किया जाता है कि यह उनकी एक ऐसी विशेषता है जो उन्हें अन्य भक्तो से अलग स्थान दिलाती है। तुलसीदास जी का कथन देखिए 'जेहि जोनि जन्मौ कमबस तहँ रामपद अनुरागऊ,' रसखान का कथन है 'मानुष हौ तो वही रसखानि ' इन दोनो कथनो मे अतर स्पष्ट लक्षित होता है। गोस्वामी जी प्रत्येक जन्म मे राम-पद प्रेम चाहते हैं और रसखान प्रत्येक जन्म मे, चाहे मनुष्य हो, पशु हो, पक्षी हो, पत्थर हो कुछ भी हो, कृष्ण का सामीप्य चाहते है। रसखान कृष्ण से पृथकत्व की कल्पना भी नही कर सकते थे वे कृष्ण के स्वरूप मे लय हो जाना चाहते थे।

अपने स्वरूप का लय जितना रसखान ने किया है, उतना हिंदू-मुसलमान कोई भी नहीं कर सका। यों तो अनेक मुसलमान हिंदू देवताओं के भक्त हुए हैं, कवि भी हुए हैं किंतु जिस प्रकार मुसल्मानीपन का त्याग रसखान ने किया है उस प्रकार अन्य कोई मुसलमान नहीं कर सका। हिंदू-संस्कृत-प्रेमी जायसी में भी विदेशीपन नहीं निकल सका। अनेक मुसल्मानों ने मन लगाकर कृष्ण का गुणगान किया किंतु अपनी रंगत न छोड़ सके। रसखान ही ऐसे हुए हैं जो किसी भी हिंदू-भक्त से कम नहीं मालूम होते। यदि बतला न जाय कि वे मुसल्मान थे तो उनके सवैयों को सुनकर कोई विश्वास नहीं कर सकता कि वे हिन्दू नहीं थे। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने जो कहा है 'इन मुसल्मान हरिजनन पै कोटिन हिंदू वारिये' वह इन्हीं रसखान को ही विशेषरूप से दृष्टि में रखकर कहा है। उन मुसल्मान हरिजनन में वे रसखान को ही प्रधानता देते थे। इस दृष्टि से ये मुसल्मान हिन्दी कवियों में पृथक् और श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। अपने अहंकार का लोप करने के कारण हिंदू-मुसल्मान सभी भक्त कवियों में एक विशेष स्थान के अधिकारी हैं, क्योंकि कविता और भक्ति दोनों चाहती हैं कि कवि तथा भक्त अपने अहंकार का लोप कर दे।

इनके काव्य में विशेष महत्व की वस्तु शब्द-माधुर्य है। इस शब्द-माधुर्य का इतना प्रभाव पड़ा कि सरस कविता सुनने के इच्छुक कहने लगे 'कोई रसखान सुनाओ'। इनके शब्द-माधुर्य के कारण इनकी कविता इतनी सरस हो गई कि किसी भी सरस कविता को 'रसखान' के नाम से पुकारने लगे। रमणीयता और सौंदर्य-बोध का योग इनकी कविता में बड़ा जबर्दस्त है, इसी योग के कारण इनकी कविता में सरसता तथा आकर्षणशक्ति आ गई है।

भिन्न-भिन्न दृष्टियों से यह दिखलाया जा चुका है कि किस प्रकार रसखान हिन्दी साहित्य में एक विशेष और पृथक् स्थान रखते हैं। ख्याति की

दृष्टि से पंडितजन और साधारण जनता दोनों में प्रतिष्ठा पाने की दृष्टि से, भाव व्यंजना की दृष्टि से, स्वभाविकता की दृष्टि से, प्रचलित काव्य-रचना पद्धति को छोड़कर प्राचीन कवित्त-सवैया की परंपरा ग्रहण करने की दृष्टि से, भक्ति-भावना की दृष्टि से तथा विदेशीपन के त्याग की दृष्टि से रसखान हिंदी साहित्य में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। ये हिंदी-काव्य-गगन में सबसे पृथक् ऐसे ज्योतिष्पिंड है, जिनकी ज्योति तब तक भारतखंड को प्रकाशित करती रहेगी जब तक हिंदी साहित्य का अस्तित्व रहेगा।

कवित्त-सवैये

कहा 'रसखानि' सुखसंपति सुमार कहा
कहा महा जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लीनें राज सिंधु आर-पार को॥
जप बार बार तप संजम अपार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हो नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार, चित्त—
चाह्यो न निहारयो जो पै नंद के कुमार को॥१॥

कंचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक उजारे सौं।
और प्रभुताई सब कहाँ लौं बखानौं
प्रतिहारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं॥
गंगा जी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद—
बीस बेर गाई ध्यान कीजत सकारे सौं।
ऐसे ही भये तो कहा कीन्हौ 'रसखानि' जो पै,
चित्त दै न कीन्ही प्रीति पीतपटवारे सौं॥२॥

सुनिए सब की कहिए न कछू, रहिए इमि या भव-बागर में।
करिए व्रत नेम सचाई लिए, जिनतें तरिए भव-सागर में॥
मिलिए सबसों दुरभाव बिना, रहिए सतसंग उजागर में।
'रसखानि' गुविन्दहिं यों भजिए, जिमि नागरि को चित्त गागर में॥३॥

प्रान वही जु रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहि वाहि रिझायो ।
सीस वही जिहि वे परसे पग, अंग वही जिहि वा परसायो ।।
दूध वही जु दुहायो री वाही ने, दही सु दही जु वही ढरकायो ।
और कहा लौं कहा 'रसखानि', सुभाव वही जु वही मन भायो ।।४।।

संपति सों सकुचावै कुबेरहिं, रूप सों देत चुनौती अनंगहिं ।
भोग लखे ललचाइ पुरन्दर, जोग सों गंग लई धरि मंगहिं ।।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि', रसै रसना जिहि मुक्ति तरंगहिं ।
जो जिन वाके न रंग रँग्यो, जु रह्यो रँगि राधिका रानी के रंगहिं।।५।।

कंचन-मंदिर ऊँचे बनाइ कै, मानिक लाय सदा झमकावै ।
प्रातहिं ते सगरी नगरी, गजमोतिन हो की तुलानि तुलावै ।।
पाले प्रजानि प्रजापति सो बन, संपति सों मघवाहिं लजावै ।
ऐसो भयो तो कहा रसखानि', जु सावरे ग्वाल सो नेह न लावै ।।६।।

बैन वही उनको गुण गाइ, औ कान वही उन बैन सों सानी ।
हाथ वही उन गात परैं, अरु पाँय वही जु वही अनुजामी ।।
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करे मनमानी ।
त्यों 'रसखानि' वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी ।।७।।

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि, नागन के गन गाजत री ।
मुरली मधुरी धुनि ओठन पै, उत डामर नाद सो बाजत री ।।
'रसखानि' पितंबर एक कँधा पर, एक बघंबर छाजत री ।
अरी देखहु संगम लै बुडकी, निकसे यह भेख बिराजत री ।।८।।

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूली लगावत है ।
चहुँ ओर जटा अँटकी लटकै, सुभ सीस फनी फहरावत है ।।
'रसखानि' जेई चितवै चित्त दै, तिनके दुख दुन्द भगावत है ।
गज खाल कपाल की माल बिसाल, सो गाल बजावत आवत है ।।९।।

बैद की औषधि खाइ नहीं, न करै बहु संजम री सुनि मोसें ।
तेरोई पानी पियें 'रसखानि', सजीवन जानि लहै सुख तोसें ।।
ए री सुधामयी भागीरथी, सब पथ्य कुपथ्य बनैं तुहि पोसें ।
आक धतूरो चबात फिरै, विष खात फिरै सिव तेरे भरोसें ।।१०

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल जो कियो सो न निहारो ।
गौतम - गेहनी कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हर्यो दुख भारो ।।
काहे को सोच करै 'रसखानि', कहा करि है रविनन्द बिचारो ।
कौन की संक परी है, जु माखन-चाखनहार सो राखनहारो ।।१

देस बिदेस के देखे नरेसन, रीझि के कोऊ न बूझ करैगो ।
ताते तिन्हें तजि, जानि पर्यो गुनि, को गुन औगुन गाँठि परैगो ।।
बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है, जो कहुँ नैकु सुढारि ढरैगो ।
तौ वह लाडलो छैल अहीर को, पीर हमारे हिये की हरैगो ।।१

मानुष हौं तौ वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ।।
पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं नित, कालिंदी कूल कदंब की डारन ।।१

जो रसना रस ना बिलसै, तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।।
मो कर नीकी करैं करनी, जु पै कुंज कुटीरन देहु बुहारन ।।
सिद्धि समृद्धि सबै 'रसखानि', लहौं ब्रज रेणुका अंग सँवारन ।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही, कालिंदी कूल कदंब की डारन ।।१

सेस, सुरेस, दिनेस, गनेस, प्रजेस, धनेस महेस मनाओ ।
कोऊ भवानी भजौ, मन की, सब आस सबै बिधि जाय पुराओ ।।
कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूँ मन बाञ्छित पाओ ।
पै 'रसखानि' वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसाओ ।।

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्ध नवो निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिननैं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिनहूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

लोग कहैं ब्रज के 'रसखानि', अनंदित नंद जसोमति जू पर।
छोहरा आज नयो जनम्यो तुम, सो कोऊ भाग भरयो नहिं भू पर॥
बारक दाम सँभार करो, बनी पानी पियौ सु उतार ललू पर।
नाचत रावरो लाल गुपाल सो काल से व्याल कपाल के ऊपर॥

आजु गई हुती भोरही हौं, 'रसखानि' रई कहि नंद के भौनहिं।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहि॥
तेल लगाइ, लगाइ कै अंजन, भौंह बनाइ, बनाइ डिठौनहिं।
डारि हमेल निहारति आनन, वारति ज्यौं चुचकारति छौनहिं॥

धूर भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछोटी॥
वा छबि को 'रसखानि' बिलोकत, वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी॥

आपनो सो ढोटा हम सबही को जानत हैं,
दोऊ प्रानी सबही के काज नित धावहीं।
ते तौ 'रसखानि' अब दूर तें तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं॥
आये दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जेऊ आये तेऊ लोचन दुरावहीं।
कहा कहों आली खाली देत सब ठाली,
हाय मेरे बनमाली कौन काली तें छुड़ावहीं॥२

गावै गुनी गनिका गन्धर्व औ, सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यौं, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥२१

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद लैं सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पर पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥२२

संकर से सुर जाहि भजैं, चतुरानन ध्यान मैं काल बितावैं।
नेक हिये मे जो आवत ही, 'रसखानि' महाजड़ बिज्ञ कहावैं॥
जा पर सुन्दर देवबधू, नहिं वारत प्रान अबार लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥२३

गुञ्ज गरे, सिर मोर पखा, अरु चाल गयंद की मो मन भावै।
साँवरो नंदकुमार सबै, ब्रजमंडली मैं ब्रजराज कहावै॥
साज समाज सबै सिरताज, औ छाज की बात नहीं कहि आवै।
ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै॥२४

ब्रह्म मैं ढूढ्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कहू कबहू, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि परयो, रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुरो वह कुंज कुटीर मैं, बैठो पलोटत राधिका पायन॥२

कंस के कोप की फैल गई, जब ही ब्रज मंडल बीच पुकार सी।
आय गयो तब ही कछनी, कसिके नटनागर नंदकुमार री॥
द्वैरद को रद खैंचि लियो, 'रसखानि' हिये मन आई बिचार सी।
लागी कुठौर लई लखि तोर, कलंक तमाल तें कीरति डार सी॥२

ग्वालन संग जैबो औ चरैबो गाय उनहीं संग,
हेरि तान गैबो सेंचि नैन करकत हैं।
ह्या के गजमुक्तामाल वारों गुंजमालनि पै,
कुंज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं॥
गोबर को गारो मु तो मोहि लगै प्यारो,
नाहिं भावै वे महल जे जटित मरकत हैं।
मंदर तें ऊंचे कहा मन्दिर है द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिये खरकत हैं ॥२७॥

गोरज विराज भाल लहलही बनमाल,
आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदुतान री।
जैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर तैसी
वंक चितवनि मंद मंद मुसकान री॥
कदम बिटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढि देखु पीतपट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपन बुझावै, नैन
प्राननि रिझावै आवै 'रसखानि' री ॥२८॥

आयो हुतो नियरे 'रसखानि', कहा कहू तू न गई वह ठैया।
या ब्रज की बनिता जिहि देखिकै, वारहिं प्राननि लेहिं बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ॥२९॥

भौंह भरी बरुनी सुथरी, अतिसै अधरानि रँग्यो रँग रातो।
कुंडल लोल कपोल महाछबि, कुंजनि ते निकस्यो मुसकातो॥
'रसखानि' लखे मन खोय गयो, मग भूलि गई तन की सुधि सातो।
फूटि गयो सिर को दधि भाजन, टूटिगो नैननि लाज को नातो ॥३०॥

दोउ कानन कुंडल मोर पखा, सिर सोहै दुकूल नयो लटको।
मनिहार गरे सुकुमार, धरे, नट भेस अरे पिय को टटको॥
सुभ काछनी बैजनी, पैजनी पाँयन आनन मैं न लगै चटको।
वह सुंदर को 'रसखानि' अली, जु गलीन में आइ अबै अटको॥३१॥

आजु सखी नँदनंदन री, तकि ठाढ़ो है कुंजनि की परिछाहीं।
नैन बिसाल की जोहन कै, सर बेधि गये हियरा जिय माहीं॥
घायल घूमि सुमार गिरी, 'रसखानि' सम्हार रह्यो तन नाहीं।
ता पर वा मुसकानि की डौंडी, बजी ब्रज मैं अबला कित जाहीं॥३२॥

रंग भरयो मुसकात लला, निकस्यो कल कुंजनि ते सुखदाई।
मैं तबही निकसी घर ते तकि नैन बिसाल की चोट चलाई।
'रसखानि' सो घूमि गिरी धरनी हरिनी जिमि बान बगी गिरि जाई।
टूटि गयो घर को सब बंधन छूटिगो आरज-लाज-बड़ाई॥३३॥

वह गोधन गावत गाइन मैं, जबते इहि मारग ह्वै निकस्यो।
तब ते कुलकानि कितीयो करौ, नहिं मानत पापी हियो हुलस्यो॥
अब तौ जु भई सु भई कहा होत है, लोग अजान हँस्यो सु हँस्यो।
कोऊ पीर न जानत जानत सो जिनके हिय में रसखानि बस्यो॥३४॥

आजु री नंदलला निकस्यो, तुलसी बन तें बनि कै मुसकातो।
देखे बनै, न बनै कहत कछु, सो सुख जो मुख मैं न समातो॥
हौं 'रसखानि' बिलोकिबे कौं कुलकानि तजी जु भजो हिय मातो।
आइ गई अलबेली अचानक, ए भटू लाज को काज कहा तो॥३५॥

बेनु बजावत गोधन गावत, ग्वालन के सँग गोमधि आयो।
बाँसुरी मैं उन मेरोई नाम लै ग्वालन के मिस टेरि सुनायो॥
ए सजनी सुन सास के त्रासन, बाहर हौ के उसाँस न आयो।
कैसी करौं 'रसखानि' नहीं चित, चैन नहीं, चित चोर चुरायो॥३६॥

तेरी गलीनि में जा दिन ते, निकस्यो मनमोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सो कौन सी बात, चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत॥
वे 'रसखानि' जो रीझिंगे नेकु, तौ रीझि कै क्यों न बनाय रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तौ निसंक ह्वै काहे न अंक लगावत॥३७॥

दूर ते आइ दिखाइ अटा, चढ जाइ, गह्यो तहाँ दूर ते वारो।
चित्त कहूँ, चितवै कितहू हो, कान्ह को चाहि करै चखचारो॥
'रसखानि' कहै यह बीच अचानक, जाइ सिढी चढि सास पुकारो।
सूखि गई, सुकुमारि हियो, हनि मैनिन सो कहैयो कान्ह सिधारो॥३८॥

वह नन्द को साँवरो छैल अली, अब तो अति ही इतरान लग्यो।
नित घाटन बाटन कुंजन में, मोहि देखत ही नियरान लग्यो॥
'रसखानि' बखान कहा करिए, तकि सैनिन सो मुस्कान लग्यो।
तिरछी बरछी सम मारत है, दृग बान कमान सु कान लग्यो॥३९॥

आवत है बन ते मनमोहन, गायन संग लसै ब्रजग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत, अभीत इतै करिगो कछु ख्याला॥
हेरत टेरि थकी चहुँ ओर ते, झाँकि झरोखनि ते ब्रजबाला।
देखि सुआनन को 'रसखानि', तज्यो सब द्योस को ताप कसाला॥४०॥

चीर की चटक औ लटक नवकुंडल की,
भौंह की मटक नेक आँखिन दिखाउ रे।
मोहन सुजान गुन रूप के निधान, फेरि
बाँसुरी बजाय नेकु तपन सिराउ रे॥
ए हो बनवारी बलिहारी जाउँ तेरी, आजु
मेरी कुंज आय नेक मीठी तानु गाउ रे।
नंद के किसोर चितचोर मोर पखवारे,
बंसी वारे साँवरे पियारे इत आउ रे॥४१॥

एक समै जमुना जल मे, सब मज्जन हेत धँसी ब्रज गोरी ॥४१॥
त्यो 'रसखानि' गयो मन मोहन, लै कर चीर कदंब की छोरी ॥
न्हाय जबै निकसी बनिता, चहुँओर चितै चित रोस कर्यो री ।
हार हियो भरि भावन सो पट दीन लला बचनामृत बोरी ॥४२॥

जात हुती जमुना जल को, मनमोहन घेरि लियो मग आइ कै ।
मोद भर्यो लपटाय लयो पट घूँघट टारि दियो चितचाय कै ॥
और कहा 'रसखानि' कहौं, मुख चूमत घातन बात बनाय कै ।
कैसे निभै कुल कानि, रही, हिये साँवरी मूरति की छबि छाय कै ॥४३॥

ब्याही अनब्याही ब्रजमाहीं सब चाहीं, तासो
दूनी सकुचाहीं दीठि परै न जुन्हैया की ।
नेकु मुसकान 'रसखान' को बिलोकत हीं,
चेरी होत एक बार कुंजनि फिरैया की ।
मेरो कह्यो मान अन मोल गुन मानिहै री,
प्रात खात जात, न सकात, सौंह भैया की ।
माइ की अँटक तौ लौं सासु की हटक तौ लौं,
देखी न लटक जौ लौं साँवरे कन्हैया की ॥४४॥

बारही गोरस बेंचु री आज, तू माइ के मूड़ चढ़ै कत मौंडी ।
आवत जात लौं होयगी साँझ, भटू जमुना भतरौंड लौं औंडी ॥
ऐसे मे भेटत ही 'रसखानि', ह्वै है उँखियाँ बिन काज कनौडी ।
ए री बलाइ ज्यौं जाइगी बाजि, अबै ब्रजराज सनेह की डौंडी ॥४५॥

हेरति बारहिं बार उतै, तुव बावरी बाल कहा धौं करैगी ।
जो कहूँ देखि पर्यो 'रसखानि', तौ क्यों हू न बीर री धीर धरैगी ॥
मानि है काहू की कानि नहीं, जब रूप ठगी हरि रंग ढरैगी ।
याते कहौ सिख मान भटू, वह हेरनि तेरे ही पैंड परैगी ॥४६॥

मेरो सुनो, मति जाइ अली, उहाँ जौनी गली हरि गावत है।
हरि लैहै बिलोकत प्रानन को, पुनि गाढ़ परै घर आवत है॥
उन तान की तान तनी ब्रज मैं, 'रसखानि' सयान सिखावत है।
तकि पाँव धरो रपटाय नहीं, वह चारो सो डारि फँदावत है॥

बाकी कटाछ चितैब्यो सिख्यो, बहुधा बरज्यो हित कै हितकारी।
तू अपने ढिग की 'रसखानि' सिखावन दै दिन हो पचिहारी॥
कौन सी सीख सिखी सजनी, अजहूँ तजि दै बलिजाउँ तिहारी।
नंद के नंदन फंद कहूँ परि जैहै अनोखी निहारनि हारी॥

बैरिनि तौ बरजी न रहै, अब ही घर बाहिर बैर बढ़ैगो।
टोना सो नन्द ढुटौना पढ़ै, सजनी तिहि देखि बिसेख बढ़ैगो॥
सुनि है सखि गोकुल गाँव सबै, 'रसखानि' तबै सब लोग रढ़ैगो।
बैस चढ़े घर ही रह बैठि, अटा न चढ़े बदनाम चढ़ैगो॥

मेरो सुभाव चितैबे को माइ री, लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन तें मोहि लागी ठगौरी सी, लोग कहैं कोई बावरी आई॥
यौं 'रसखानि' घिरयो सिगरो, ब्रज जानत है जिय की जियराई।
जो कोऊ चाहै भलो अपनो, तो सनेह न काहू सो कीजियो माई॥

तू गरबाइ कहा झगरै, रसखानि' तेरे बस बावरो होसै।
तौहूँ न छाती सिराई अरी, करि झार इतै उतै बालन कोसै॥
लालहि लाल किये अँखियाँ, लहि लालहि लाल सो क्यों फइ रोसै।
ऐ बिधिना तू कहा धौं पढ़ी, बस राख्यो गुपालहि कौन भरोसै॥

आई खेलि होरी ब्रजगोरी बनवारी संग
अंग अंग रंगनि अनंग सरसाइगो।
कुंकुम की मार वा पै रंगनि उछार उड़ै,
बुक्का और गुलाल लाल, लाल हरसाइगो॥

छाँड़ै पिचकारिन धमारिन बिगारि गौड़ै
गाड़ै हिय हार उर रंग बरसाइगो।
रसिक सलोनो रिझवार 'रसखानि' आजु,
फागुन में औगुन अनेक दरसाइगो ॥ ५२॥

गोकुल को ग्वाल एक चौमुह की ग्वालिन सों
चाँचरि रचाइ अति धूमहि मचाइगो।
हियो हुलसाय 'रसखानि' तान गाइ बाँकी,
सहज सुभाय सब गाँव ललचाइगो।
पिचका चलाइ नव जुवती भिजाइ लाल
लोचन नचाइ उर पुर मे समाइगो।
सासहिं नचाइ, भोरी नंदहि नचाइ,
खोरी बैरिनि सचाइ गोरी मोहिं सकुचाइगो ॥५३॥

खेलत फाग सुहाग भरी, अनुरागहिं लालन को धरि कै।
मारत कुंकुम केसर के, पिचकारिन में रंग को भरि कै॥
गेरत लाल गुलाल लली मनमोहिनी मौज मिटा करि कै॥
जात चली रसखानि अली, मदमस्त मनो मन को हरि कै॥५४॥

आवत लाल गुलाल लिये, मग सूने मिली इक नारि नवीनी।
त्यो 'रसखानि' लगाइ हिये, भटू मौज कियो मन माँहि अधीनी॥
सारी फटी सुकुमारी हटी, अँगिया दरकी सरकी रँग भीनी
लाल गुलाल लगाइ, लगाइ कै अंक, रिझाइ बिदा करि दीनी ॥५५॥

लीने अबीर भरे पिचका 'रसखानि' खड्यो बहु भाव भरो जू।
मार से गोपकुमार कुमार वे, देखत ध्यान टरो न टरो जू॥
पूरब पुन्यनि दाव परयो अब, राज करै उठि काज करो जू।
अंक भरो निरसंक उन्हे, इहि पाख पतिव्रत ताख धरो जू॥५६॥

जाहु न कोऊ सखी जमुना जल, रोके खड़ो मग नंद को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै, 'रसखानि' चलावत प्रेम को भाला॥
मैं जु गई हुती बैरन बाहिर, मेरी करी गति टूटिगो माला।
होरी भई कै हरी भये लाल, कै लाल गुलाल पगी ब्रज बाला॥५

फागुन लाग्यो सखी जब तें, तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचै नहिं एक, बिसेख यहै सब प्रेम अच्यो है॥
साँझ सकारे वही 'रसखानि' सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भई, अरु कौन भटू जिहिं मान बच्यो है॥

जानत हैं न कछू हम ह्याँ, उन ह्याँ पढ़ि मंत्र कहा धौं दयो है।
साँची कहैं जिय मैं निज जानिकै, जानत हौ जस कैसो लयो है॥
'रसखानि' यहै सुनि कै गुनि कै, हियरा मन टूक ह्वै फाटि गयो है।
लोग लुगाई कहैं ब्रज माहिं, अरु हरि चेरी को चेरो भयो है॥

होती जु पै कुबरी ह्याँ सखी, भरि लातन मूका बकोटती केनी।
लेती निकारि हिये की सबै, नक छेदि कै कौड़ी पिराइ कै देनी॥
ऐसो नचावती नाच वा राँड़ को, लाल रिझावन को फल पेनी।
नेती सदा 'रसखानि' लिये, कुबरी के करेज में सूल यों भेती॥

जानैं कहा हम मूढ़ सबै, समुझी न तबै जबहीं बन आई।
सोचत हैं मन ही मन में, अब कीजै कहा बतिया जगबाई॥
नीचो भयो ब्रज को सब सीस, मलीन भई 'रसखानि' दुहाई।
चेरी को चेटक देखहु री, हरि चेरो कियो धौं कहा पढ़ि माई॥

काहू सों माई कहा कहिये, सहिये जु जोई 'रसखानि' सहावै।
नेम कहा जब प्रेम कियो, अब नाचिये सोई जो नाच नचावै॥
चाहिति हैं हम और कहा सखि, क्यों हूँ कहूँ पिय देखन पावैं।
चेरिय सों जु गुपाल रच्यो तो, चलौ री सबै मिलि चेरी कहावैं॥

झटपट उल्ट पुलट पट परिधान
जान लागी लालन पै सबै बाम वन मे।
रस रास सरस रँगीलो 'रसखानि' आनि
जानि जोर जुगति बिलास कियौ जन मे ॥६८॥

कानन दै अँगुरी रहिहौ जबही मुरली धुनि मंद बजैहै।
मोहनी तानन सो 'रसखानि' अटा चढि गोधन गैहै तौ गैहै॥
टेरि कहौ सिगरे ब्रजलोगनि काल्हि कोऊ कितनौ समुझैहै।
माई री वा मुख की मुसकान, सम्हारि न जैहै न जैहै न जैहै॥

मोरपखा सिर ऊपर राखि हौ, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढि पितंबर लै लकुटी, बन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सो, तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
पै मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

समझी न कछू अजहू हरिसो, ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै।
नित साँस की सीरी उसासनि सो, दिन ही दिन माइ की कानि नसै॥
चहुँ ओर बबा का सा मोर सुने, मन मेरेऊ आवत रीम कसै।
पै कहा कहा वा 'रसखानि' बिलोकि, हियो हुलसै हुलसै हुलसै॥

प्रेम पगे जु रँगे रँग साँवरे, माने मनाये न लालची नैना।
धावत है उनही जित मोहन, रोके रुकै नहि घूँघट ऐना॥
कानन को कल नाहि परै, सखी प्रेम सो भीजे सुने बिन बैना।
'रसखानि भई मधु की मखिया, अब नेह को बंधन क्योहूँ छुटै ना॥

कोउ रिझवारिन यो 'रसखानि', कहै मुकतानि सो माग भरौगी।
कोऊ कहै गहनो अंग अंग, दुकूल सुगंध सन्यो पहिरौगी॥
तू न कहै यो कहे तो कहो हू, कहूँ न कहूँ तेरे पाँय परौगी।
देखहु याहि सुफूल की माल, जसोमति लाल निहाल करौंगी॥

देखिहौं आँखिन सों पिय को, सुनिहौं अरु कान सों बातन प्यारी।
बाँकि अनंगनि रानि की सुरभीन सुगावति नाक न डारी।
त्यों 'रसखानि' हिये न बनै बहि साँवरी मूरति मैन उजारी।
गाँव भरो कोऊ नाँव धरो, हौं तो साँवरे के बनिहौं सुकुमारी॥७४॥

काल्हि परयो मुरली धुनि मैं 'रसखानि' जू कानन नाम हमारो।
ता दिन ते नहिं धीर रह्यो जग जानि लियो अति कीनो पँवारो॥
गाँवन गाँवन मे अब तो बदनाम भई सब सों कै किनारो।
तौ सजनी फिरि फेरि कहौं पिय मेरो वही जग ठोंकि नगारो॥७५॥

नवरंग अनंग भरी छबि सों वह मूरति आँखि गड़ी ही रहै।
बतिया मन की मन ही में रहै घतिया उर बीच अड़ी ही रहै।
तबहू 'रसखानि' सुजान अली नलिनी दल बूँद पड़ी ही रहै।
जिय की नहिं जानत हौं सजनी रजनी अँसुवान लड़ी ही रहै॥७६॥

उनही के सनेहन सानी रहैं उनही के जु नेह दिवानी रहैं
उनही की सुनै न औ बैन, त्यौं सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं॥
उनही सँग डोलन मे 'रसखानि', सबै सुख सिन्धु अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी, आँखि मेरी अँसुवानी रहैं॥७७॥

सजन-नैन फँदे पिंजरा छबि नाहिं रहैं थिर कैसहू माई।
छूटि गई कुलकानि सखी रसखानि लखी मुसकानि सुहाई।
चित्र कढ़े से रहे मेरे नैन न बैन कढ़ै मुख दीन्हें दुहाई।
कैसी करौं जित जाऊँ तितै सब बोलि उठैं यह बावरी आई॥७८॥

अबहीं गई खिरक गाइ के दुहाइबे कों,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनी या पानि की।
कोऊ कहै छरी, कोऊ मौन परी डरी कोऊ—
कोऊ कहै मरी, गति हरी अँखियानि की॥

सास व्रत ठाने, नद बोलत सयाने धाइ,
　　　　दौरि दौरि जानै, खानि देवतानि की।
सखी सब हसैं मुरझानि पहिचानि, कहू—
　　　　देखी मुसकानि वा अहीर 'रसखानि' की ॥७९॥

बंसी बजावत आनि कढ़ो सो, गली मे अली कछु टोना सो डारै
नेक चितै तिरछी करि दीठि चलो गयो मोहन मूठि सी मारै।
ताही घरी सो परी वह सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहूँ वारै
राधिका जीहै तो जीहै सबै, न तो पीहै हलाहल नन्द के द्वारै।

बाँकी बिलोकनि रंग भरी, 'रसखानि' खरी मुसकानि सुहाई।
बोलत बैन अमीरस दैन, महारस ऐन सुने सुखदाई।
कुंजन मे पुरवीथिन मे पिय, गोहन लागि फिरा मै री माई।
बाँसुरी टेर सुनाई अली, अपनाइ लई ब्रजराज कन्हाई।

बजी है बजी 'रसखानि' बजी, सुनि कै अब गोपकुमारि न जी है।
न जीहै कदाचित कामिनी कोऊ, जु कान परी वह तान कु पीहै।
कु पीहै बचाव को कौन उपाय तियान पै मैन ने सैन सजी है।
सजी है तो मेरी कहा बस है, जब बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी है॥

आजु अली इक गोपलली, भई बावरी नेकु न अंग सँभारै।
मात अघात न देवन पूजत, सासु सयानी सयानी पुकारै॥
यो 'रसखानि' घिरचो सिगरो ब्रज, आन को आन उपाय बिचारै।
कोऊ न कान्हर के कर ते, वह बैरिनि बाँसुरिया गहि जारै॥

ए सजनी वह नन्द को साँवरो, या बन धेनु चराइ गयो है।
मोहिनि ताननि गोधन गाइ कै, बेनु बजाइ रिझाइ गयो है॥
ताही घरी कछु टोना सो कै, 'रसखानि' हिये मे समाइ गयो है।
कोऊ न काहू की कानि करै, सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है॥

मो मन मोहन को मिलि कै, मधुरी मुसकान दिखाय दई।
वह मोहिनी मूरति मैनमयी, सबही चितई तब हौं चितई॥
उन तो अपने अपने घर की 'रसखानि' भली विधि राह लई।
कछु मोहि को पाप पर्यो पल में, पग आवत पौरि पहार भई॥८५॥

लाज के लेप चढ़ाइ कै अंग, पची सब सीख को मन्त्र सुनाइ कै।
गारुड़ ह्वै ब्रज लोग थक्यो करि औषधि बासुक सौंह दिवाइ कै॥
ऊधो सो को 'रसखानि' कहै जिन चित्त धर्यो तुम एते उपाइ कै।
कारे बिसारे को चाहै उतार्यो अरे विष बावरे राख लगाइ कै॥८६॥

रसखानि सुन्योहै वियोग के ताप, मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सो मुख गो मुरझाय लगी लपटै बिरहागि हिया की॥
ऐसे में आवत कान्ह सुने, हुलसी सु तनी तरकी अँगिया की।
यो जग जोति उठी तन की उसकाइ दई मनो बाती दिया की॥८७॥

काहू कहै रतिया की कथा, बतिया कहि आवत है न कछू री।
आय गोपाल लियो भरि अंक, कियो मन भायो पियो रस कूरी॥
ताहि दिना सों गड़ी अँखियाँ, 'रसखानि' मेरे अंग अंग में पूरी।
पै न दिखाई परै अब साँवरो, दै के वियोग विथा की मजूरी॥८८॥

जल की न घट भरै मग की न पग धरै,
घर की न कछु करै बैठी भरैं साँसु री।
एकै सुनि लोट गईं, एकै लोटपोट भईं,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री॥
कहै 'रसखानि' सो सबै ब्रजबनिता बिधि
बधिक कहाये हाय हुई कुल हँसु री।
करिये उपाय बाँस डारिये कटाय,
नाहि उपजैगो बाँस नाहि बजै फेरि बाँसुरी॥८९॥

दूध दुह्यो सीरो परयो तातो न जमायो वीर,
जामन दयो सो धरो धर्योई सटाय्गो ।
आन हाथ आन पाँय सबही के तबही ते,
जबही ते रसखानि तानन सुनाय्गो ॥
ज्यों ही नर त्यों ही नारी नै माई तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो ।
जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥९०॥

एरी आजु कालिह सब लोक-लाज त्यागि, दोऊ
सीखे है सबै विधि सनेह सरसाइबो ।
यह रसखानि' दिना द्वै में बात फैलि जहै,
कहा लौ सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो ॥
आजु हौ निहार्यो बीर निपट कलिंदी तीर
दोउन को दोउन सो मुरि मुसकाइबो ॥
दोऊ परै पैया, दोऊ लेत है बलैया
उन्हें भूलि गई गैया, इन्हें गागर उठाइबो ॥९१॥

कौन ठगौरी करी हरि आजु, बजाइ कै बाँसुरिया रस भीनी ।
तान सुनी जिनही तिनही, तबही तिन लाज बिदा करि दीनी ॥
घूमे घरी घरी नन्द के द्वार, नवीनी कहा कहु बाल प्रवीनी ।
या ब्रजमंडल में रसखानि' सु कौन भटू जो लटू नहि कीनी ॥९२॥

लोक की लाज तजी तबही, जब देख्यो सखी ब्रजचन्द सलोनो ।
खंजन मीन सरोजन की छवि, गंजन नैन लला दिन होनो ॥
'रसखानि' निहारि सकै जु सम्हारि कै, को तिय है वह रूप सुठोनो ।
भौंह कमान सो जोहन को सर बेधत प्रानन नंद को छौनो ॥९३॥

मंजु मनोहर रूप लखै तबही सबही पतिही तजि दीनो।
प्रान पखेरू परे तलफैं, वह रूप के जाल मैं आस अधीनो॥
आँख सों आँख लड़ी जबहीं, तब सों ये रहैं अँसुवा रंग भीनो।
या 'रसखानि' अधीन भई, सब गोप लली तजि लाज नवीनो॥९४॥

अँखिया अँखिया सों मिलाय बनाय, हिलाय रिझाय हिया भरिबो।
बतिया चित चोरन चेटक सी रस चारु चरित्रन उच्चरिबो॥
'रसखान' के प्रान सुधा भरिबो, अधरान पै त्यों अधरा धरिबो।
इतने सब मैन के मोहनी जंत्र पै मन्त्र बसीकर हू करिबो॥९५॥

जा दिन ते निरख्यो नँदनंदन कानि तजी घर बन्धन छूट्यो।
चार बिलोकनि की न सुमार सम्हारि गई, मन मार ने लूट्यो॥
सागर की सरिता जिमि धावत, रोकि रहे कुल को पुल टूट्यो।
मत्त भयो मन संग फिरै 'रसखानि' सरूप सुधारस घूट्यो॥९६॥

कानन कुंडल मोरपखा सिर, कंठ में माल बिराजति है।
मुरली कर में, अधरा मुसकानि, तरंग महाछबि छाजति है॥
'रसखानि' लखे तन पीतपटा, सतदामिनि की दुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परे, कुलकानि हियो तजि भाजति है॥९७॥

बंक बिलोकनि है दुख मोचन दीरघ लोचन रंग भरे हैं।
घूमत बारुनी पान किये जिमि, झूमत आनन रंग ढरे हैं॥
गंडन पै झलकै छबि कुंडल, नागरि नैन बिलोकि अरे हैं।
'रसखानि' हरैं ब्रजबालनि के मन, ईषद हाँसी की फाँसी परे हैं॥९८॥

अति लोक की लाज, समूह में, घेर के राखि थकी सब संकट सों।
पल में कुलकानि की मेड़न की, नहि रोकी रुकी पल के पट सों॥
'रसखानि' सो केतो उचाटि रही, उचटी न सँकोच की औचट सों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही, अटकी अँखियाँ लटकी लट सों॥९९॥

सुन्दर स्याम सजे तन मोहन, जोहन मैं चित चोरत हैं।
बाँके बिलोकनि की अवलोकनि, नोकनि के दृग जोरत हैं॥
'रसखानि' मनोहर रूप सलोने को, मारग ते मन मोरत हैं।
गृहकाज समाज सबै कुल लाज, लला ब्रजराज जू तोरत हैं॥१८

नैनन बंक बिसाल के बानन, झेलि सकै अस कौन नवेली।
बेधत है हिय तीछन कोर सों, मार गिरी तिय केतिक हेली॥
छोड़े नहीं छिनहू 'रसखानि', सु लागी फिरै द्रुम सों जिमि बेली।
रौर परी छबि की ब्रजमंडल, कुंडल गंडन कुंतल केली॥१८

मकराकृत कुंडल गुंज की माल, वे लाल लसै पग पाँवरिया।
बछरान चरावन के मिस भावतो, दै गयो भावती भाँवरिया॥
'रसखानि' बिलोकत ही सिगरी, भईं बावरिया ब्रज डाँवरिया।
सजनी इहि गोकुल में विष सो, बगरायो है नंद के साँवरिया॥१८

मोहन की मुरली सुन कै, वह बौरी ह्वै आनि अटा चढ़ि झाँकी।
गोप बड़ेन की दीठी बचाइ कै, दीठि सों दीठि मिली दुहुवा की॥
देखत मोह भयो अँखियानि मैं, को करै लाज औ कानि कहा की।
कैसे छुटाई छुटै अँटकी, 'रसखानि' दुहूँ की बिलोकनि बाँकी॥१८

मोर के पंखन मौर बन्यो, दिन दूलह है अली नंद को नंदन।
श्री बृषभानसुता दुलही दिन जोरी बनी बिधना सुखकंदन॥
'रसखानि', न आवत मो पै कह्यो, कछु दोऊ फँदे छबि प्रेम के फंदन।
जाहि बिलोकें सबै सुख पावत ये ब्रज जीवन है दुखदंदन॥१८

आजु अचानक राधिका, रूपनिधान सों भेंट भई बन माहीं।
देखत दीठि जुरी 'रसखानि', मिले भरि अंक दिये गलबाहीं॥
प्रेम पगी बतियाँ दुहुवा की, दुहूँ को लगी अति ही चित चाहीं।
मोहनी मन्त्र बसीकर जन्त्र, हहा पिय की तिय की नहिं-नाहिं॥१८

सोई है रास मैं नैसुक नाचि कै, नाच नचायो कितै सबको जिन।
सोई है री रसखानि इहैं, मनुहारहू सूधे चितौत नहीं छिन॥
तो मैं धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयो बस हा हा करी तिन।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिर लगर मोड़ो कनौड़ो करै छिन ॥१०६॥

मोहन के मन भाय गयो, इक भाव सों ग्वालिनि गोधन गायो।
ताकों लग्यो चट चौहट सो हरबराइ कै गात सो गात छुवायो॥
'रसखानि लखी यह चातुरता चुपचाप रहीं जब लौं घर आयो।
नैन नचाइ चितै मुसकाइ, सु ओट ह्वै जाइ अँगूठा दिखायो ॥१०७॥

बिहरै पिय प्यारी सनेह सने, छहरै चुनरी के झवा झहरैं,
सिहरैं नव जोबन रंग अनंग सुभंग अपांगनि की गहरैं॥
बहरैं रसखानि नदी रस की घहरैं बनिता कुल हू भहरैं।
कहरैं बिरहीजन आतप सों लहरैं लली लाल लिये पहरैं ॥१०८॥

दृग दूने खिंचे रहे कानन लौं लट आनन पै लहराय रही।
छक छैल छबीली छटा छहराय कै, कौतुक कोटि दिखाय रही॥
झुक झूम झमाकन चून अमी, चखि चांदनी चंद चुराय रही।
मन भाय रही 'रसखानि' महा, छवि मोहन को तरसाय रही ॥१०९॥

अंग ही अंग जराव जगे, अरु सीस बनी पगिया जरतारी।
मोतिन माल हिये लटकैं, लटुआ लटकै लट घूँघरवारी॥
पूरन पुन्यनि ते 'रसखानि', ये मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चारो दिसा के महाअघ हाके, जो झाँकि झरोखे मे बाँकेबिहारी ॥११०॥

लाडली लाल लसै लखिये, अलि पुंजनि कुंजनि में छबि गाढ़ी।
ऊजरी ज्यो बिजुरी सी जुरी चहुँ गूजरी केलि कला सम काढ़ी।
त्यौं 'रसखानि' न जानि परै सुखमा तिहुँ लोकन की अति बाढ़ी।
बालन बाल लिये बिहरैं छहरैं बर मोरपखी सिर ठाढ़ी ॥१११॥

मान की औधि है आधी घरी अरु जो रसखान' डरै डर के डर ।
तोरिये नेह न छोड़िये पा परे ऐसे कटाच्छ महा हियरा हर ॥
लाल गुपाल को हाल बिलोक री नेक छुवै किन दै कर सा कर ।
ना कहिबे पर वारत प्रान कहा लख वारिहै हाँ कहिबे पर ॥११२॥

आई सबै ब्रज-गोपलली ठिठकी ह्वै गली जमुना जल न्हाने ।
औचक आइ मिले रसखानि बजावत बेनु सुनावत ताने ॥
हा हा करी सिसकी सिगरी, मति मैन हरी हियरा हुलसाने ।
घूमै दिवानी अमानी चकोर सो, ओर न दोऊ चले दृग बाने ॥११३॥

वह सोई हुती परजंक लली, लला लीनो सु आयु भुजा भरिकै ।
अकुलाय के चौंक उठी सु डरी निकरी चह अंकनि ते फरिकै ।
झटका झटकी मे फटो पटुका, दरकी अगिया मुकता झरिकै ।
मुख बोल कढ़ै रिस सों 'रसखानि', हटौ जु लला निबिया धरिकै ॥११४॥

एक समै इक सुन्दरी को ब्रजजीवन खेलत दृष्टि परयो है ।
बाल प्रवीन प्रवीनता कै सरकाइ कै काँध पै चीर धरयो है ॥
यो रसही रसही 'रसखानि', सखी अपनो मनभायो करयो है ।
नंद के लाड़िले ढाकि दै सीस इहा हमरो दुहूँ हाथ भरयो है ॥११५॥

सोई हुती पिय की छतिया लगि, बाल प्रवीन महा मुद माने ।
केस खुले छहरै बहरै, फहरैं छबि देखत मैन अमाने ॥
वा रस मे 'रसखानि' पगी, रति रैन जगी अँखिया अनुमाने ।
चंद पै बिंब औ बिंब पै कैरव, कैरव पै मुकतान प्रमाने ॥११६॥

अन ते न आयो यही गाँवरे को जायो,
माई बाप री जिवायो प्याय दूध दधि बारे को ।
सोई 'रसखानि' तजि बैठो पहिचान जान,
लोगन नचावत नचैया द्वार द्वारे को ॥

मैया की सौं सेच कछू मटुकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर चीरि डारे को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी देखो,
नगर हमारे ग्वार बगर हमारे को ॥११७॥

एक समै मुरली धुनि मे रसखानि लियो कहुँ नाम हमारो।
ता दिन तें यहि बैरी बिलासिन, झाँकन देत नही है दुवारो॥
होत चबाव बचाओ सु क्यों करि, क्यों अलि भेंटिये प्रान पिथारो।
दौठि परे ही लग्यो चटको, अँटकौं हियरे पियरो पटवारो ॥११८॥

कान्ह भये बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहिहै।
निसि द्यौस रहै यह साथ लगी, यह सौतिन सौंमत को सहिहै॥
जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि' सु क्यों न हमैं दहिहै।
मिलि आवो सबै कहुँ भाग चलैं अब तौ ब्रज मे बँसुरी रहिहै ॥११९॥

काह कहूं सजनी सँग की, रजनी नित बीतै मुकुन्द को हेरी।
आवन रोज कहैं मनभावन, आवन की न कबौ करी फेरी॥
सौतिन भाग बढ्यो ब्रज मे, जिन लूटत है निसि रंग घनेरी
भो 'रसखानि' लिखी बिधना, मन, मारि कै आपु बनी हो अहेरी ॥१२०॥

एक तें एक लौं काननि मै रहै, ढीठ सखा सग लीन्हें कन्हाई।
आवत ही हा कहा लौ कहौ, कोऊ कैसे सहै अति की अधिकाई॥
खाया दही मैरो भाजन फोरयो न छोड़त चीर दिवाये दुहाई।
'रसखानि' तिहारिहिं सौंह जसोमति, लाज मरू पर छूट न पाई ॥१२१॥

सुन री पिय मोहन की बतिया, अति ढीठ भयो, नहिं कानि करै।
निसि बासर औसर देत नही, छिनही छिन द्वारे ही आनि अरै॥
निकसी मति नागरि डौंडी बजी, ब्रजमडल मे यह कौन भरै॥
अब रूप की रौरि परी 'रसखानि', रहै तिय कोऊ न मांझ घरै ॥१२२॥

सोहत है चँदवा सिर मोर को, तैसिय सुन्दर पाग कसी है।
तैसिये गोरज भाल बिराजत, तैसी हिये बनमाल लसी है॥
'रसखानि' बिलोकत बौरी भई, दृग मूँदि कै ग्वालि पुकार हँसी है।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैनन माँझ बसी है॥१२

देखन को सखि नैन भये, सु सनै तन आवत गादन पाछे।
कान भये इन बातन के, सुनिबे को अमीनिधि बोलन आछे॥
पै सजनी न सम्हारि परै, वह बाँकी बिलोकन कोर कटाछै।
भूमि भयो न हियो मेरो आली, जहाँ पिय खेलत काछिनी काछै॥१२

जा दिन ते मुसकानि चुभी उर, ता दिन ते जु भई बनवारी।
कुंडल लोल कपोल महाछबि, कुंजन ते निकस्यो सुखकारी॥
हौं सखि आवत ही बगरे पग, पैंड तजी रिझई बनवारी।
'रसखानि' परी मुसकानि के पानिन कौन गहै कुलकानि विचारी। १२

मैन मनोहर बैनु बजै, सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यों दमकै चमकै झमकै दुति, दामिनि की मनो स्याम घटा है॥
'रसखानि' महा मधुरी मुख की, मुसकानि करै कुलकानि कटा है।
ए सजनी ब्रजराजकुमार, अटा चढ़ि फेरत लाल बटा है॥१२

कान्ह को लाल सलोनो सखी यह, जाकी बड़ी अँखियाँ अनियारी।
जाहन बंक बिसाल के बानन, बेधत है हिय तीछन भारी॥
'रसखानि सम्हारि परै नहिं चोट सु कोटि उपाय करो सुखकारी।
भाल लिख्यो बिधि नेह को बंधन, खोलि सकै अस को हितकारी॥१२

नैन लख्यो जब कुंजन ते, बनि कै निकस्यो मटक्यो मटक्यो री।
सोहत कैसे हरा डुपटो, सिर तैसे किरीट लसै लटक्यो री॥
को 'रसखानि' रहै अँटक्यो, हटक्यो, ब्रजलोग फिरै भटक्यो री।
रूप अनूपम वा नट को, हियरे अँटक्यो अँटक्यो अँटक्यो री॥१

आजु सखी इक गोपकुमार ने रास रच्यो इक गोप के द्वारे।
सुन्दर बानिक सों 'रसखानि', बन्यो यह छोहरा भाग हमारे॥
ए बिधना जो हमें हँसती, अब नेकु कहूँ उत को पग धारे।
ताहि बदा फिर आवै घरै, बिनहीं तन औ मन जोबन वारे॥१२९॥

वा मुसकान पै प्रान दियो जिय जान दियो वह तान पै प्यारी।
मान दियो मन मानिक के सँग, वा मुख मंजु पै जोबन वारी॥
वा तन कों 'रसखानि' पै री तन ताहि दियो नहिं ज्ञान विचारी।
सो मुंह मोड़ करी अब का हहा लाल ले आज समाज में ख्वारी॥१३०॥

समझै न कछू अजहू हरि सों ब्रज नैन नचाइ नचाई हँसै।
नित सास की सीख उसाँसनि सों दिन ही दिन माई री कानि नसै।
चहूँ ओर बबा की सों सोर सुनै मन मेरेऊ आवत रीस नसै॥
पै कहा करौं वा 'रसखानि' बिलोकि, हियो हुलसै हुलसै हुलसै॥१३१॥

पूरब पुन्यनि तें चितई जिन, ये अँखियाँ मुसकानि भरी री।
कोऊ रहीं पुतरी सी खरी कोऊ घाट गिरी, कोऊ बाट परी री॥
जे अपने घर ही 'रसखानि' कहैं अरु हौंसनि जाति मरी री।
लाल जे बाल बिहाल करीं, ते बिहाल करीं न निहाल करी री॥१३२॥

औचक दीठि परे कहुँ कान्ह जू, तासों कहै ननदी अनुरागी।
सो सुन सास रही मुख फेरि, जिठानी फिरै जिय में रिस पागी॥
नीके निहारि कै देखे न आँखिन, हौं कबहूँ भरि नैन न जागी।
है पछितावो यहै सजनी, कि कलंक लग्यो पर अंक न लागी॥१३३॥

मोरपखा मुरली बनमाल, लखी हिय मैं हियरा उमह्यो री।
ता दिन तें निज बैरिन के कहि कौन न बोल कुबोल सह्यो री॥
अब तौ 'रसखानि' सों नेह लग्यो कोऊ एक कह्यो कोऊ लाख कह्यो री।
और तें रंग रह्यो न रह्यो, इक रंग रँगी सोई रंग रह्यो री॥१३४॥

आजु भटू मुनरी बट के तर, नंद के साँवरे रास रच्यो री।
नैननि सैननि बैननि में, नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यो री॥
जद्यपि राखन कौं कुलकानि, सबै ब्रजबालन प्रान पच्यो री।
तद्यपि वा 'रसखानि' के हाथ, बिकानि कों अंत लच्यो पै लच्यो री॥१३५॥

प्रेमबाटिका

प्रेम-अयनि श्री राधिका, प्रेम-बरन नँदनंद।
'प्रेमबाटिका' के दोऊ, माली-मालिन द्वंद ॥१॥

प्रेम-प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥२॥

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर-सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नाहिं 'रसखान' ॥३॥

प्रेम - बारुनी छानि कै, बरुन भये जलधीस।
प्रेमहिं तें विषपान करि, पूज्य जात गिरीस ॥४॥

प्रेम रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।
या मे अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल ॥५॥

कमल तंतु सो छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम - पंथ अनिवार ॥६॥

लोक - वेद - मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह ॥७॥

कबहुँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुखचंद।
दिन दिन बाढ़त ही रहै, होत कबहुँ नहिं मंद ॥८॥

भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान - गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किये उपाय ॥९॥

श्रुति, पुरान, आगम, स्मृतिहि, प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम - बीज अँकुवार ॥१०॥

आनँद-अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान ।
कै वह विषयानन्द, कै, ब्रह्मानन्द बखान ॥११॥

ज्ञान, कर्मऽरु उपासना, सब अहमिति को मूल ।
दृढ़ निश्चय नहिं होत, बिन किये प्रेम अनुकूल ॥१२॥

शास्त्रन पढ़ि पंडित भये कै मोलवी कुरान ।
जुपै प्रेम जान्यो नही कहा कियो 'रसखान ॥१३॥

काम, क्रोध, मद मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य ।
इन सबही ते प्रेम है, परे, कहत मुनिवर्य ॥१४॥

बिन गुन जोवन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि ।
शुद्ध, कामना त रहित, प्रेम सकल 'रसखानि' ॥१५॥

अति सूछ्म कोमल अतिहि, अति पियरो अति दूर ।
प्रेम कठिन सब ते सदा, नित इकरस भरपूर ॥१६॥

जग म सब जान्यो परे, अरु सब कहै कहाय ।
पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥१७॥

जेहि बिनु जाने कछुहि नहि, जान्यो जात बिसेस ।
सोई प्रेम, जेहि जानि कै, रहि न जात कछु सेस ॥१८॥

दंपति सुख अरु विषय रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान ।
इनतें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम 'रसखान' ॥१९॥

मित्र, कलत्र, सुबंधु, सुत, इनमे सहज सनेह ।
शुद्ध प्रेम इनमे नही, अकथ कथा सबिसेह ॥२०॥

इक अंगी बिनु कारनहि, इकरस सदा समान ।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥२१॥

डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय ।
रहै एकरस चाहि कै, प्रेम बखानो सोय ॥२२॥

प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसास ॥२३॥

प्रेम हरी को रूप है त्यों हरि प्रेम सरूप
एक होइ द्वै यों लसै, ज्यों सूरज अरु धूप ॥२४॥

ज्ञान, ध्यान, विद्या मती मत विस्वास विवेक।
बिना प्रेम सब धूर है, अग जग एक अनेक ॥२५॥

प्रेम-फाँस मे फँसि मरै सोई जियै सदाहिं।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥२६॥

जग में सब ते अधिक अति ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहूँ ते अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२७॥

जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहू की नहिं चाहि
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥२८॥

कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा भाला तीर कोउ, कहत अनोखी ढार ॥२९॥

पै मिठास या मार के, रोम रोम भरपूर।
मरत जियै, झुकतौ थिरै, बनै सु चकनाचूर ॥३०॥

पै एतो हूँ हम सुन्यो, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ॥३१॥

सिर काटो, छेदो हियो, टूक टूक करि देहु।
पै याके बदले बिहँसि, वाह वाह ही लेहु ॥३२॥

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूँ जहँ एक भे, मन मिलाइ महबूब ॥३३॥

दो मन इक होते सुन्यो, पै वह प्रेम न आहि।
होइ जबै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि ॥३४॥

याही ते सब मुक्ति ते, लही बड़ाई प्रेम ।
प्रेम भये नस जाहि सब, बँधे जगत के नेम ॥३५॥
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम आधीन ।
याही ते हरि आपुही याही बड़प्पन दीन ॥३६॥
वेद मूल सब धर्म यह, कहैं सबै श्रुतिसार ।
परम धर्म है ताहु ते, प्रेम एक अनिवार ॥३७॥
जदपि जसोदा नंद अरु, ग्वाल बाल सब धन्य ।
पै या जग मे प्रेम को, गोपी भई अनन्य ॥३८॥
वा रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि ।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि ॥३९॥
श्रवन, कीरतन, दरसनहि, जो उपजत सोइ प्रेम ।
शुद्धाशुद्ध विभेद ते, द्वै विध ताके नेम ॥४०॥
स्वारथमूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावनुकूल ।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल ॥४१॥
रसमय स्वाभाविक बिना, स्वारथ अचल, महान ।
सदा एकरस, शुद्ध सोइ, प्रेम अहै 'रसखान' ॥४२॥
जाते उपजत प्रेम सोइ, बीज कहावत प्रेम ।
जामे उपजत प्रेम सोई, क्षेत्र कहावत प्रेम ॥४३॥
जाते पनपत, बढ़त, अरु, फूलत, फलत महान ।
सो सब प्रेमहि प्रेम यह, कहत रसिक 'रसखान' ॥४४॥
वही बीज अंकुर वही, एक वही आधार ।
डार, पात, फल, फूल सब, वही प्रेम सुख सार ॥४५॥
जा जाते, जामे, बहुरि, जाहित कहियत बेस ।
सो सब प्रेमहि प्रेम है, जग 'रसखान' असेस ॥४६॥

कारज-कारन-रूप यह प्रेम अहै रसखान।
कर्ता, कर्म, क्रिया, करण, आपहि प्रेम बखान॥४७॥

राधा माधव सखिन सँग, बिहरत कुंज-कुटीर।
रसिकराज रसखानि जँह कूजत कोइल कीर॥४८॥

बिधु, सागर, रस, इंदु, सुभ बरस सरस रसखानि।
'प्रेमवाटिका' रचि रुचिर, चिर हिय हरखि बखानि॥४९॥

अरपी श्री हरिचरन जुग, पदुम पराग निहार।
बिचरहिं यामैं रसिकबर, मधुकर-निकर अपार॥५०॥

परिशिष्ट

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छाडि 'रसखान ॥१॥

तोरि मानिनी ते हियो फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखान' ॥२॥

प्रेम निकेतन श्री बनहि, आइ गोबधन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम ॥३॥

कहा करै 'रसखान' को, कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है माखन चाखनहार ॥४॥

मोहन छबि रसखानि' लखि, अब दृग अपने नाहि।
ऐंचे आवत धनुष से छूटे सर से जाहि ॥५॥

मो मन मानिक लै गयो, चितै चोर नँदनन्द।
अब बे मन मैं का करूँ परी प्रेम के फंद ॥६॥

देख्यो रूप अपार, मोहन सुन्दरश्याम को।
वह ब्रजराजकुमार, हिय जिय नैननि मे बस्यो ॥७॥

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटाँक नहि देत।
यहै कहा पाटी पढी, दल को पीछो लेत ॥८॥

ए सजनी लोनो लला, लह्यो नंद के गेह।
चितयो मृदु मुसकाइ कै, हरी सबै सुधि देह ॥९॥

ए री चतुर सुजान, भयो अजानहि जानि कै।
तजि दीनी पहिचान, जान आपनी जान को ॥१०॥